हिन्दी मासिक

50 PAISE

जून १९६

Office Copy

सुप्त धनुरासन

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

रामतीर्थ

वर्ष—५—अंक ३
जून १९६५

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार—प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	९
उमेशवाणी		१०
सुप्त धनुरासन	उमेशयोगदर्शन ग्रंथसे	१३
अन्वेषण (कविता)	श्री कृष्ण शेंदरे 'हृदयेश'	१५
दीर्घजीवन रहस्य	डा. गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'	१७
भारत मां के वीर सपूतो (कविता)	प्र. ग. यावलकर	३८
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	४०
आशा और निराशा	नरेशचन्द्र भार्गव	५०
सद्विचार	लक्ष्मीकान्त मिश्र	५६
नीग्रो बालक की ज्ञानयात्रा	विश्वंभरदत्त नौटियाल	६६
इतिहास में गो महिमा	का. ल. मोदी 'प्रभाती'	७३
हरी सब्जियों द्वारा स्वास्थ्य	प्रतिभा जैन	८०
मानवता	वासुदेव 'राकेश'	८६
बुनियादी तालीम	एम. आर. गुप्त	९३

लेख		लेखक	पृष्ठ
उठो जवानो	(कविता)	पूरनचन्द्र 'सुमन'	१०२
अपने समान सबको समझो		शिवनारायणसक्सेना	१०४
कर्मवाद		विनोद किशोर सहाय	११७
रामचरित मानस		टीकाकार योगिराज उमेशचन्द्र जी	१३३
आत्म विस्मृति		डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'	१४७
नायलान की साड़ी	(कहानी)	श्री. शान्ता मानावत	१५५
वैज्ञानिक जल चिकित्सा		डा. जे. पी. वर्मा	१६२
पाठकों के अभिमत			१७९
स्वानुभव		नारायण किशोरलाल वर्मा	१८४
प्रश्नोत्तर		सम्पादकीय कलमसे	१८७
आश्रमसमाचार		संवाददाता द्वारा	१९९

मुख पृष्ठ का परिचय

श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संस्थापक संचालक की स्थिति सुप्त धनुरासन में दर्शनीय है विशेष विवरण के लिए इसी अंक के पृष्ठ १३ पर देखिये।

विशेष सूचना

लेखकों से आग्रह है कि वे लेख भेजने से पूर्व 'लेखकों से' वाले पृष्ठ को पढ़ लें। फर केवल अपनी रचना को निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११ के पते पर भेजें लेख भेजने के बाद यदि किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करना आवश्यक समझें तो उत्तर के लिये जवाबी कार्ड भेजना आवश्यक है। अन्यथा कोई उत्तर न भेजा जायेगा।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट २ दादर बम्बई नं. १४ से प्रकाशित किया।

क्या आप ऐसा कर सकते हैं?

जेब में पैसे होते हुए किसी जरूरतमंद आदमी को खाली हाथ लौटा देने में झिझकते हैं? शायद हाँ, मगर फिर भी आप दिल कड़ा करके उसे छोड़कर आगे बढ़ जाइए। अवश्य ही आप ऐसा कर सकते हैं। ऐसा करके आप एक अच्छा काम करेंगे। भीख मांगना अपराध है और उसे बढ़ावा न देकर आपने एक अच्छे नागरिक का कर्तव्य निभाया है। गाड़ियों में घुसकर भिखमंगे बीमारियां फैलाते हैं। वे जहां भी जाते हैं गंदगी साथ ले जाते हैं। आप उन्हें अपनी रेलगाड़ियों से अलग ही रखिए। अपनी भावनाओं पर काबू रखिए और अपना दान भिखारियों के हित की संस्थाओं को दीजिए।
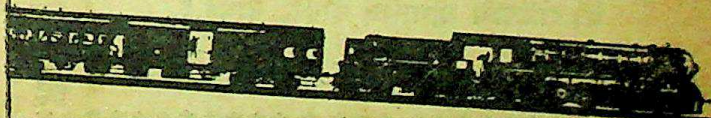
जनता जनार्दन का सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत ३० वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु

मई मास में प्राप्त सद्भावना राशि

१-श्री गंगाप्रसाद हरिप्रसाद चतुर्वेदी गया	२१)
२- ,, बासंतीलाल कुबेर भाई महेसाणा	२१)
३- ,, प्रवीणचन्द्र सा. मावाडी गंगा नगर	२१)
४- ,, बृजलाल माधवलाल भावसार बम्बई	२१)
५-श्रीमती राघम्मा स. नायडू विजय नगर	२५)
६- ,, नलिनी बेहन नरसेराम पालघाट	२१)
७- ,, जसुमती बेहन गोपाल जी अर्नाकुलम	१५)
८- ,, रंभा बेहन सुखलाल बम्बई	१५)
९-कुमारी कुलवंती इ. डॉक्टर पूना	१८)
१० ,, चंचल बेहन इनामदार नाशिक शहर	२३)
११ ,, मालती ताई अ. जोशी अहमद नगर	२५)

सद्भावनाराशि निम्न पते पर भेजें:—
श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १.

रोगों से मुक्ति पाने के लिए
इसे अवश्य पढ़िये

योगिक—प्राकृतिक चिकित्सा डाक व्यवस्था विभाग

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

योगिक और प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ उठाकर शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्त बनिए।

शारीरिक एवं मानसिक रोग निवारणार्थ रोगी योगिक और प्राकृतिक चिकित्सा के आधार से अपने रोग निदान के डाक द्वारा लिखित सलाह निम्न नियमानुसार ले सकते हैं।

१–व्यक्तिगत रूपसे निदान पूछने के लिये प्रथमबार ५) रु. फीस होगी, दूसरी बार ३) रु. और फिर हर बार के लिए दो रुपये फीस होगी।

२–रोगी को इसके अन्तमें छपी बातों का उत्तर स्पष्ट रूप से अलग कागज पर लिखकर भेजना होगा।

३–रोगी को फीस मनिआर्डर अथवा पोस्टल आडर से ऊपरोक्त पते पर स्पष्ट निर्देश के साथ भेजने होगी।

४–रोगी को उत्तर हिन्दी, अंग्रजी, गुजराती, मराठी मेंसे जिस भाषा में चाहिए उसके लिए लिखना चाहिए।

५–प्रश्नावली रजिस्ट्रीसे भेजनी चाहिए और उत्तर भी रजिस्ट्री से ही भेजा जायगा सामान्य डाक से भेजी गई प्रश्नावली खो जाने की जवाबदारी भेजने वाले की होगी विदेश से प्रश्नावली भेजने वालों को डाकव्यय के लिए अतिरिक्त धन भेजना होगा।

६–योगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग की सलाह और सूचनानुसार रोगी को पथ्य पालन करना होगा।

७–फीस देकर इलाज करानेवाले रोगी को निदान की शुरूवात से विवरण रखना होगा और मांगने पर उसे दे देना होगा।

८–रोगी को योगिक उपचार, और प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी के लिए हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती मराठी में छपे उमेश योगदर्शन ग्रंथ को अपनी इच्छित भाषा में रु. १७–५० मनि आर्डर द्वारा भेजकर ऊपरोक्त पते से मंगाना पड़ेगा।

रोगी को सलाह पूछने के लिए निम्न बातों को स्पष्ट करके भेजना चाहिए।

रोगी का नाम व पता, उमर, वजन, ऊंचाई। मल बद्धता रहती है ? अपचन है नींद गाढ़ी आती है ? शरीर में अशक्ति है ? रात को स्वप्न आता है ? रात को कितने घंटे सोते हो ? दिन को कितना समय सोतें हो ? वीर्य दोष है ? शरीर में कोई चर्म रोग है ? कफ विकार है ? पित्त विकार है ? वात विकार है ? कोई मानसिक चिन्ता है ? शरीर में जड़ता है ? स्मरण शक्ति कैसी है ? मांसाहारी या शाकाहारी ? विवाहित अथवा अविवाहित ? हाथ पैर के तलुवे गरम या ठंड़े रहते हैं ? पेशाब का रंग कौनसा है ? केवल बौद्धिक परिश्रम है अथवा शारीरिक ? प्रातः भ्रमण, तैरना, और कोई व्यायाम चालू है ? स्नान ठंडे या गरम जल से करते हो ? दारू, गांजा, तम्बाकू, सिगरेट बीड़ी, तपकीर, चाय आदि का व्यसन है ? पहले कौनसा रोग हुआ है ? शिरदर्द कबसे है ? वर्तमान रोग का विवरण ? वर्तमान में कौनसी दवा चालू है। कभी प्राकृतिक अथवा योगिक चिकित्सा करवाई है ? कब ?

लेखकों से

'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय—

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग दूर करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाभ प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं का जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये, बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

विशेषः—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजें केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ में अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है यह अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है

रचना भेजनेका पताः निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहकों को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है। परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफसाफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्ठुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

वर्ष ५] जून १९६४ [संख्या ३

वैदिक-प्रार्थना

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः
ऋ. वे. आ. सू. १-१·४-३६

भावार्थ— 'वाणी का परम व्योम' इस चौथे प्रश्न-विषयक विचारणा चलती है । जहां से वाणी प्रकट होती है उस मूल अक्षर-तत्व तक वाणी पहुँच सकती नहीं है । इसी से 'नेति नेति' श्रुति पुकारती है, वैसे वेद की वाणी से पुरस्कर्ता कविजन भी—'न विजानामि' कहकर आत्मतत्व की महिमा गाता है । इस ऋचा में स्थित 'निण्य' शब्द गुप्त रहस्य की समस्या को खोलता है । ऋग्वेद में 'निण्य' शब्द गुप्त रहस्य के लिये प्रयुक्त है, ऐसा 'निण्य' शब्द के प्रयोग देखने से पता चलता है । अब तक पदार्थ विज्ञान पर प्रकाश डाला गया । अब 'अक्षर विज्ञान' की विचारणा इस ऋचा से शुरू होती है । वस्तुतः 'पद और पदार्थ' अविनाभाव से नित्य संबद्ध है, अतः आत्मतत्व के साथ अक्षर तत्व का विचार भी आवश्यक है ।

(२५१) बाल्यावस्था में लालक-पालक, माता-पिता अपनी संतानों के दांत स्वच्छ करने में असावधानी रखते हैं तथा कुमारावस्था तथा युवावस्था में स्वयं स्वच्छता के बारे में दुर्लक्ष रखते हैं। फलस्वरूप अल्प वय से दांतों के रोग हो जाते हैं। वह रोग का परिणाम अंत में दुःखदाई रूप में परिवर्तित होता है। क्रीम, टूथ ब्रश से दांत नहीं स्वच्छ करना चाहिये। मुलायम वस्तु से दांत नहीं स्वच्छ करें।

बदाम के छिलके का भस्म, चावल के छिलके का भस्म, बबुल की दातण, आयुर्वेद पद्धति से तैयार किया गया पौडर से दांत स्वच्छ, बलवर्धक तथा आयु वृद्धि होती है। रामतीर्थ टूथ पौडर आयुर्वेदीय पद्धति से निर्माण किया जाता है। विक्रयार्थ दूकानों में नहीं रखा जाता। आवश्यकतानुसार आश्रम से प्राप्त होता है।

(२५२) आत्म ज्ञानी पुरुष के लक्षण सामान्य लोगों से भिन्न रहते हैं। माया के बंधन में फसे हुये संसारी जब हंसते हैं तब आत्मज्ञानी रोते हैं। संसार बंधन में फसे हुए लोग जब रोते हैं तब आत्मज्ञानी हंसते हैं। इसका अर्थ

है कि क्षणिक संसार सुख में दुःख मिश्रित है ऐसा समझकर आत्मज्ञानी रोते हैं। और संसारी लोग दुःख से हताश होते हैं तब सच्चा सुखके लिये अवश्य ही प्रयत्न शील होंगे ऐसा समझकर आत्मज्ञानी हंसते हैं।

(२५३) जर, जोर तथा जमीन के अहंकार से मानवका पतन निश्चित रूपसे होता है। इन तीनों के ऊपर सदा सतर्क रूप से ध्यान रखना होगा। अन्यथा सर्व नाश का कारण बनेंगे। (धन, वैभव (जर), पत्नी (जोर), जमीन (मकान-वाड़ी, क्षेत्र, मठ-मंदिर)

(२५४) जिसकी वाणी मधुर वचन, संयमशील शब्द, विवेक पूर्ण शब्द रचना, भावनामय स्वर, तथा भगवान का भजन कीर्तन में रुचि रखनेवाली होगी वह व्यक्ति समाज का सहकार सदा प्राप्त करेगा। कटु वचन, कर्कश शब्द, क्रोधाभास का शब्द तथा निंदा की बातों से मानव पतन की ओर प्रयाण करता है।

(५५५) दान विनाका जीवन नरक तुल्य है। शरीर से, मन से तथा धन से यथा योग्य सेवा, परोपकार तथा दान करने से अंतःकरण पवित्र होकर पुण्यरूपी यशगामी बनता है। अंतःकरण निष्कलंक बनता है।

(२५६) व्यापारकी अभिवृद्धि के लिये हंसना यह एक कला है। प्रसगोपात हंस करके व्यापार करने वाले आमदनी बढ़ा लेते हैं। इससे उल्टे सरकारी अफसरों की स्थिति है। अनिवार्य संजोग सिवाय अफसर लोगों की मुख मुद्रा प्रभाव शीलता के साथ कठोर भावना मुद्राद्वारा दिखाई पड़ती है।

इस आदत से अधिकांश अफसरों के जीवन कठोर अवस्था में रखने कि आदत पड़जाती है। फलस्वरूप सर्व सामान्य मानव से दूर रहना पड़ता है। दुनियादारी के व्यवहार से अलिप्त जीवन व्यतीत करना पड़ता है। संजोगावशात् आपत्ति के समय में शर्म; अपमान और अभिमान के वशीभूत होकर जीवन में दुःखी होते हैं अधिकारके समयमें व्यवहार उपयोगी मध्यम मार्ग का उपयोग करने से आम जनता परेशान नहीं होगी और स्वयं का जीवन का मूल्य अधिक पवित्रमय समझने लगेंगे।

सुप्त धनुरासन

(उमेशयोगदर्शन ग्रंथ से)

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम्।
कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तितांग निधाय योगी धनुरासनं तत्॥
—घे. सं. २.१८

पेट के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ कर बायें हाथ से बायें पैर की पिण्डली और दाहिने हाथ से दाहिने पैर की पिण्डली को पकड़ रखें। श्वास को फेफड़ों में भर लें। शिर छाती और नाभि के नीचे के भाग (कन्धस्थान) तथा पैरों को जमीन से ऊपर उठा रखें। केवल पेट का भाग जमीन से लगा रहे। तत्पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। शरीर को तानकर रखें। इस समय पैरों के कमरके पास आ आने की सम्भावना है, किन्तु उन्हें आने न दें और शरीर को धनुष के आकार के समान बना रखें। पैरों में और हाथों में तनाव अच्छी तरह रखें। तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर, हाथों से पैरों को छोड़ कर सारे शरीर को जमीन पर लिटा दें। आसन का अभ्यास परिपक्व हो जाने के पश्चात् आसन की स्थिति में शरीर के अगले और पिछले भाग को झूले की तरह नीचे और ऊपर ले जा सकते हैं और अगल-बगल घुमा भी सकते हैं।

समय

१० दिन तक २ बार : ११ से १५ दिन तक ३ बार। १६ से २२ दिन तक ४ बार। तत्पश्चात् शक्ति; आयु और लाभ के अनुसार ६ बार तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

इस आसन से समग्र शरीर को यथेच्छ रूप में व्यायाम मिल जाता है। विशेषकर गला, मेरुदण्ड और कमर की कमजोरी मिटाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है इससे छाती का भाग विकसित और विशाल होता है। यकृतविकार, मूत्रपिण्ड, मूत्राशय और अण्डकोष का विकार, शिश्नेन्द्रिय की निर्बलता आदि अनेक व्याधियां दूर हो जाती हैं। पथरी रोग से मुक्ति दिलाने में यह आसन बड़ी मदद करता है। पेशाब का रुक-रुक कर आना, पेशाब में जलन तथा पेशाब के वेग को रोक रखने में असमर्थता आदि व्याधियां पूर्णतया दूर हो जाती हैं। अधिकांश लोगों का शरीर वृद्धावस्था में झुक जाता है, किन्तु इस आसन के अभ्यास से वृद्धावस्था में भी शरीर कसीला और तना हुआ रहता है। युवावस्था के प्रायः सभी लक्षण वृद्धावस्था में भी विद्यमान रहते हैं। बवासीर के रोगियों को भी यह आसन अतीव लाभ पहुंचाता है और वायुप्रकृतिप्रधान स्त्री-पुरुषों के लिये तो यह आसन आशीर्वाद के समान है। पसीने और मुंह की दुर्गन्ध, गले का दर्द, भोजन में अरुचि आदि विकार सदा के लिये समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक लाभ इस आसन का अभ्यास करते रहने से प्राप्त होते हैं।

अन्वेषण

रचियिता—श्री कृष्ण शंदरे हृदयेश

तुझको खोजा अलि-गुंजन में, वन में, उपवन में, मधुवन में ॥
सुख-स्वप्नों के मधुर लोक में, दीन दुखी के करुण शोकमें ॥१॥

कलियों की स्फुट विहँसन में ।
शीतल, मंद, सुगंध पवन में ॥
विकसित पूर्ण कमल शतदल में ।
जल के उच्च लहर चंचल में ॥

कवि के उच्च कल्पना-घन में ।
शुभ दार्शनिक विचार-गहन में ॥
ज्ञानी के विज्ञान-कथन में ।
राजनिष्ठ के मधुर वचन में ॥

वीणा के संगीत-गीत में, प्रेमीजन के प्रीति-रीत में ॥
वाक-चतुर के शब्द-जाल में, नट के सुन्दर नृत्य ताल में ॥२॥

न्यायी के चातुर्य-न्याय में ।
वणिकों के सब अर्थ-आय में ॥
ऋतु वसंत के नव किसलय में ।
वर्षा ऋतु के सुखद समय में ॥

कामिनि के मृदु मृग-नयन में ।
भक्तजनों के भजन, नमन में ॥

देवी की श्रद्धा-अर्चन में ।
धनिक वर्ग के धन-अर्जन में ॥

अखिल विश्व के तृण कण कण में ।
व्यापकमय इस पूर्ण गगन में ॥

अभिभावक के संरक्षण में ।
योद्धाओं के समरांगण में ॥

योगीजन के पुण्य सदन में, विधवाओं के करुण रुदन में ॥
विरहणि के मृदु गान करुण में, सच्चरित्र के उत्तम गुण में ॥ ३ ॥

राजाओं के राजभवन में ।
निर्धन की कुटिया-निर्जन में ॥

चंचल बालक के बचपन में ।
बाला के उठते यौवन में ॥

दुखिया के करुणा-क्रंदन में ।
सुखी पुरुष के वन-नंदन में ॥

शिष्यों के गुरु पद वंदन में ।
मलयागिरी के मृदु चंदन में ॥

दम्पत्ति के सुखमय जीवन में ।
बली भीम के बलमय तन में ॥

वृद्ध पुरुष के वृद्धापन में ।
मरणासन्न के अटल मरण में ॥

गुरु, पितु, मातु के मृदुल चरण में, अपनी दुर्मति सकल हरण में ॥
धनियों की भी कृपण शरण में, नर-नारी के लग्न वरण में ॥४॥

रमणी के आवरण-प्रणय में ।
रण-विजयी के मत्त-विजय में ॥

गज गामिनि की मस्त गमन में ।
युगल-प्रेमी के मुक्त रमण में ॥

(शेष पृष्ठ २०० पर)

दीर्घ जीवन रहस्य

लेखक - डा. गंगाप्रसाद गौड, 'नाहर,' एन. डी.

शाश्वत यौवन के मर्म के साथ-साथ दीर्घ जीवन के रहस्य को जानने के लिये जितना आज के वैज्ञानिक विकल हैं, उतने प्राचीन काल के वैज्ञानिक विकल नहीं थे। वैज्ञानिक ही क्यों? आजकल तो यह प्रश्न मानव मात्र की जिज्ञासा का एक अत्यन्त स्वाभाविक विषय बन गया है। जिसके सम्बन्ध में कहा तो यहां तक जाता है कि जो मानव विश्व को नष्ट करने वाला अणु बम बना सकता है उसके सामने दीर्घ जीवन के रहस्य का सही सही पता लगा लेना भला क्या मुश्किल है। इसीलिये आधुनिक वैज्ञानिक अब विश्वास करने लगे हैं कि बावजूद वर्तमान में जीवन-यापन सम्बन्धी विविध विषमताओं के, मनुष्य यदि चाहे तो वह अपनी आयु को काफी लम्बा बना सकता है।

प्राचीन काल में पृथ्वी पर चिरजीवन-प्राप्ति की समस्या पर बिल्कुल खोज बीन नहीं हुई, ऐसी बात भी नहीं है। प्राचीन काल से पूर्व प्राचीनतम काल में केवल चिरजीवन प्राप्त करने के लिये ही नहीं, अपितु अमरता प्राप्त करने के लिये भी अमृत का आविष्कार देवों और दानवों ने मिलकर कर ही डाला था। उसके बाद संयम, नियम एवं ब्रह्मचर्य द्वारा चिरजीवन तथा अमरता प्राप्त की जाने लगी। इतिहास बताता है कि भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु प्राप्त थी, अर्थात् मृत्यु उनके वश में थी। चाहे वह अभी मरे, चाहे कभी न मरे। इसके अतिरिक्त महाभारत-काल का वीर अश्वत्थामा आज भी जिन्दा बताया जाता है। प्राचीन काल में ही आयुविज्ञान द्वारा काया-कल्प-उपचारों का आविष्कार हुआ, जिसके द्वारा बूढ़ा, जवान और अल्पजीवी, चिरजीवी बन सकता है, ऐसा समझा जाने लगा।

आधुनिक काल में भी कई वर्षों के अन्वेषण और परीक्षण के बाद संसार प्रसिद्ध डाक्टर गार्डनर और कुछ अन्य डाक्टरों एवं वैज्ञानिकों ने घोषणा की है कि अगले दस वर्षों में मनुष्य के चिरजीवन की समस्या हल हो जायगी और वह कमसे कम १७० वर्ष तक तो अवश्य ही जी सकेगा।

आनुवंशिकता और दीर्घ जीवन

जिन सुविख्यात वैज्ञानिकों ने मानव-मस्तिष्क और शरीर का अच्छा अध्ययन किया है, उनका कहना है कि चिर

जीवन पर आनुवंशिकता का बहुत प्रभाव पड़ता है। अर्थात् जिस परिवार, जिस घर के लोग शुरू से ही चिरजीवी होते आये हैं, उस घर में आने वाली पीढ़ियों के व्यक्ति भी प्रायः चिरजीवी ही होते हैं, इसलिये उनकी राय है कि चिर जीवन के इच्छुकों को ऐसे परिवारों में जन्म लेना चाहिये जिनमें चिर जीवन की परम्परा हो, पर दुर्भाग्यवश यह हमारे वश की बात नहीं है। इसके उपरान्त कुछ अन्य वैज्ञानिक इस विचार से सहमत भी नहीं हैं। उनका कथन है कि उपर्युक्त सिद्धान्त अव्यावहारिक तो है ही, साथ ही सार्वभौमिक भी नहीं है, और यह कोई जरूरी नहीं है कि यदि किसी परिवार में बाप चिर जीवी हो तो उसका बेटा भी चिर जीवी हो ही, अथवा यदि बाप अल्प हो तो प्रयत्न करके उसका बेटा अल्प जीवी न होकर, चिर जीवी न हो सके। इसलिये चिर जीवन पर आनुवंशिकता का प्रभाव पड़ता ही हैं, इसे नियम नहीं मानना चाहिये। हां, आनुवंशिकता इस विषय में संभावनायें प्रस्तुत कर सकती है। पर अगर जीवन-यापन उचित रूप में न हो तो आनुवंशिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता। इसलिये जिनके पूर्वज चिरायु वाले नहीं थे उन्हें निराश नहीं होना चाहिये। आरम्भ में हमारा जीवन-यापन कैसा रहा है और उसके बाद हम किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, इन्हीं दोनों बातों का अधिक महत्व है। जीवन-यापन का गलत तरीका अनुकूल आनुवंशिकता पर पानी फेर देता है, और इसके विपरीत अच्छा जीवन-यापन प्रतिकूल आनुवं-शिकता को भी प्रभावहीन बना देता है। अगर परिवार में

कुछ लोग कम उम्र में ही मरे हैं तो अधिकतर सम्भव यही है कि वे अपने ही दोषों के कारण अल्पायु हुये होंगे। ऐसी दशा में परिवार के दूसरे सदस्य चिरायु वाले न हों, इसका कोई कारण नहीं है।

आधुनिक सभ्यता और दीर्घजीवन

प्राचीन विश्व के इतिहास के पन्नों को उलट कर जब हम देखते हैं तो हमें मिलता है कि उस जमाने के लोग, आधुनिक काल के लोगों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न, अधिक स्वस्थ, और अधिक आयु वाले थे। गिब्बन ने रोमन साम्राज्य के क्षय का इतिहास लिखते हुए बताया है कि रोम के साम्राज्य का जब अन्त समय आगया था तब उसके सैनिकों के शरीर पर वे कवच और जिरा बखतर बहुत ढीले रहते थे, जो उनकी पिछली पीढ़ी के सैनिकों के शरीर पर पूरे आते थे। रोमनों के स्वास्थ्य के इस ह्रास का कारण गिब्बन ने विलासिता जन्य अकर्मण्यता बताया है। आज वही विलासिता जन्य अकर्मण्यता धीरे धीरे सारे विश्व में व्याप्त हो रही है। आधुनिक सभ्यता का यह युग वास्तव में यन्त्र-युग है जो मनुष्य को निरन्तर विलासी बनाता जा रहा है। मनुष्य, यन्त्र का गुलाम हो रहा है और उसे जीवन के सब आराम देकर निश्चेष्ट और बेकार बना रहा है। जिसका बुरा असर स्वास्थ्य और मानवी आयुष्य पर जो पड़ रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। उर्दू जबान के मशहूर शायर अकबर ने आजकल की सभ्यता से आजिज आकर ही इस शेर को

लिखा थाः—

"कल का आटा है नल का पानी है।
आबोदाना की हुक्मरानी है॥"

पुराने जमाने में स्वच्छ-साफ और कुयें के ताजे पानी को, दूर से मेहनत करके लाकर नहाने-धोने और पीने के काम में लाया जाता था। आज शहरों में महीनों का औटाया और कई प्रकार की दवाओं से युक्त बम्बे का पानी हमें अपनी चारपाई के पास बिना हाथ-पांव हिलाये ही मिल जाता है। ऐसे दूषित जल को पीकर और उसे घर के अन्य कामों में उपयोग कर हम खाहमखाह यह आशा करते हैं कि वह हमें स्वस्थ रखेगा और चिरायुप्रदान करेगा।

आजकल हमारे भोजन की ऐसी गिरी हुई हालत है कि इस स्थल पर उसका जिक्र करना ही बेकार है। खाने पीने की कोई भी चीज तो ऐसी आजकल नहीं बिकती जो विशुद्ध हो और जिसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो। गेहूं एक तो सड़ा-गला मिलता है, दूसरे उसके रहे सहे पोषक तत्व, आटा पीसते वक्त मशीन की नजर हो जाते हैं-जल जाते हैं। शुद्ध घृत लापता होता जारहा है और उसकी जगह डाल्डा, जो विष से कम नहीं है, और न वह तेल है न घी, अपना सिक्का बैठाता जारहा है। खेतोंमें, जितने खाद्यान्न एवं फल-तरकारियां उपजती हैं, की दशा यह है कि उनमें रासायनिक अप्राकृतिक खाद दे-देकर उनकी उपज तो बढ़ा दी

जाती है, पर उस उपज में खाद्य-गुण (पोषक गुण) जैसे होने चाहियें वैसे नहीं होते। वे रासायनिक तेज खाद की बलि चढ़ चुके होते हैं। भोजन की यह दुर्दशा, पानी की यह दुर्दशा। इनके बाद जब आधुनिक रहन-सहन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो और भी निराशा होती है। सुबह से लेकर १२ बजे रात तक का हमारा जीवन मशीनवत् भाग-दौड़ का जीवन होता है जिसमें न कहीं विराम होता है, न विश्राम। शरीर हमेशा तनाव की हालत में रहता है। मस्तिष्क सदैव चिन्तित और मन हर वक्त परेशान और उद्विग्न। जीवन, अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, और कृत्रिम। बिजली की तेज और आंखों को नुकसान पहुंचाने वाली रोशनी में दिन-रात काम करना, हृदय को कमजोर बनाने वाली साइकल आदि पैशाचिक सवारियों पर दूर २ तक भागना, मनुष्य को पंगु बनाने वाली मोटर गाड़ियों, रेलगाड़ियों, बसों, तथा तथा वायुयानों का व्यवहार तथा स्वास्थ्य को चौपट एवं उम्र को कम करने वाले सिनेमा, नाच आदि दोषपूर्ण मनोरंजनों का सहारा लेना हमारा रोज का काम हो गया है। भला इस किस्म की बातों से—इस प्रकार के विकृत जीवन-यापन से कहीं स्वास्थ्य उन्नत होता है—कहीं उम्र बढ़ती है? उलटे इस कथित आधुनिक सभ्यता के जमानेमें हमारा स्वास्थ्य धीरे धीरे गिरता जा रहा है और हमारे जीवन की क्षमता, उसकी प्रायः शक्ति सब क्रमशः क्षीण होती जा रही है। आज कल कहा तो यह जाता है कि हम प्रगति और विकास की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं, पर वस्तुतः हम अवनति

और विनाश की ओर ही तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में कोई चिरजीवन की कामना कर ही कैसे सकता है ?

पुराने जमाने में ऐसी कैफियत न थी, न ऐसी दूषित सभ्यता ही थी। उस जमाने में कूप, सरिता, तथा तड़ाग आदि का प्राकृत जल अमृत का फल देता था। पृथ्वी, प्राकृतिक खाद द्वारा उर्वरा होकर शतप्रतिशत पौष्टिक खाद्य पदार्थों के रूप में सोना उगलती थी। गाय भैंसे लाखों की तादाद में विस्तृत घने जंगलों में स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण कर घी-दूध की नदियां बहाती थीं। उस जमाने के लोग कोठरियों में बन्द रह कर मशीनों के सहारे बिजली की कृत्रिम रोशनी में रात दिन काम नहीं करते थे, अपितु खुले आकाश के नीचे बाग-बगीचों एवं अमराइयों जैसे मुक्त वातावरण वाले पंचतत्व समन्वित प्रकृति से सीधा सम्पर्क रखते हुये केवल सूर्योदय से सूर्यास्त तक कार्यरत रहते थे और पूरी रात आराम करते थे। वे साबुन का नाम तक न जानते थे और न डालडा का ही। उस जमाने में नाशकारी चाय भी न थी और न सफेद विष चीनी ही। उस जमाने के लोग खाद्य पदार्थों में मिलावट करके जनता को धोखा देने की बात सोच भी न सकते थे। उन लोगों का जीवन शान्त, कार्य प्रणाली सुव्यवस्थित तथा भावनाएं उच्च, लोकहितकारी एवं पारमार्थिक होती थीं। यही कारण था कि वे लोग हमसे अधिक स्वस्थ, हमसे अधिक सुन्दर, हमसे अधिक बलशाली तथा हमसे अधिक जीने वाले होते थे।

दीर्घजीवियों के स्वानुभव

उपर्युक्त के अतिरिक्त दीर्घजीवन सम्बन्धी तथ्यों के बारे में संसार के कितनेही अन्य विचारकों और डाक्टरों ने समय-समय पर अपने विचार प्रगट किये हैं और आये दिन करते रहते हैं। कुछ डाक्टर कहते हैं कि दीर्घजीवी होना चाहते हो तो आधा पेट अथवा आधी भूख खाओ। कुछ शाकाहार पर जोर देते हैं। जड़ीबूटी विशेषज्ञ दीर्घजीवन प्राप्ति के लिये कुछ विशेष प्रकारकी जड़ीबूटियों का सहारा लेने की बातें करते हैं। कोई मदिरा के प्याले में दीर्घायुष्य का रहस्य बताता है तो कोई आमिष के पात्र में। कुछ लोग विश्राम को दीर्घजीवन के लिये अनिवार्य बताते हैं तो कुछ अविरत परिश्रम को। तथा कुछ वैज्ञानिक मानव-शरीर में किसी ग्रन्थि विशेष को प्रभावित करके उसको सहज ही में दीर्घायुष्य प्रदान कर देने की बात सोचते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि दीर्घजीवन-प्राप्ति के सम्बन्ध में हर व्यक्ति अपना एक अलग ख्याल रखता है। सब एक मत नहीं हैं। ऐसी हालत में दीर्घायुष्य-प्राप्ति के सही नुस्खे की तलाश हमें दीर्घायुष्मानों के स्वानुभवों में करनी चाहिये।

सबसे पहले वेनिस के फ्रेंसिस्को सेकार्डी होंगी (१५८७-१७०४) की बात लीजिये। इस व्यक्ति की आयु मरने के दिन ११७ वर्ष की थी। इस जैसा तरुण शायद संसार में अबतक कोई नहीं हुआ। इसने ५ शादियां की थीं जिनसे ४९ बच्चे पैदा किये थे। यह व्यक्ति अपने समस्त जीवन-काल में एक

दिन के लिये भी बीमार नहीं पड़ा। इसकी दृष्टि, याददाश्त, तथा श्रवण-शक्ति मृत्युपर्यन्त एकसी बनी रही। १०० वर्ष की आयु में इसके बाल दोबारा काले हुये थे। ११५ वर्ष की आयु में यह चियोस द्वीप का 'वैनीटीयम कौंसल' नियुक्त हुआ था। दुनिया में इतनी आयु में किसी अन्य व्यक्ति को अफसर नियुक्त नहीं किया गया। इस व्यक्ति के सफल चिरजीवन का रहस्य क्या था? रहस्य था इसका रोज प्रातःभ्रमण। यह व्यक्ति रोजाना सुबह-सुबह ८ मील घूमने जाया करता था, यहां तक कि अपनी मृत्यु के दिन भी वह ८ मील घूमने गया था।

दूसरा व्यक्ति है लुई क्रेमर, आयु १३४ वर्ष। अपनी लम्बी उम्र का रहस्य बताते हुये वह कहता है—'गत ५० वर्षों से मैं खूब घूमता हूँ। गत २२ वर्ष तो मैं नित्यप्रति ३०-४० मील चला हूँगा। शराब पीना मैंने बहुत वर्षों से त्याग दिया है, तथा चाय, काफी एवं तम्बाकू से मुझे अत्यन्त घृणा हो चली है। सायंकाल दूध, भाजी तथा फल मेरे लिये पर्याप्त होते हैं। मैं बिना छने आटे की रोटी खाने का अभ्यास कर रहा हूँ। पेय पदार्थों में पानी, दूध तथा फलों (नारंगी, मौसमी, अनार विशेष रूप से) का रस मुझे बड़ा प्रिय है। जो जीवन से निराश हो चुके हैं उनको मेरी सलाह है—घूमना शुरू करो, पावोंसे मेहनत लो और स्वास्थ्य एवं लम्बी आयु के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हो जाओ।'

एक लम्बी आयुवाले इरानी, उम्र १२६ वर्ष की सीख है—

'खूब घूमिये, खूब दूध पीजिये, तथा खूब प्रसन्न रहिये। बेफिक्री तथा अलमस्ती चिरजीवन की कुंजियां हैं। मनुष्य को मारनेवाली चिन्ता जैसी पिशाचिनी के अतिरिक्त अन्य तो साधारण भ्रांतियां हैं। अतः हमें अपने विचार जीवन के सुखमय पहलू पर ही केन्द्रित करने चाहियें। तुम वासनाओं के गुलाम नहीं हो। चिन्तायें तुम्हें विवश नहीं कर सकतीं। पाप एवं अज्ञान में शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें। श्रम ही पूजा है।'

पश्चिम में लिडगी कारनेरो नाम का एक व्यक्ति हो गुजरा है जो १०२ वर्ष का होकर मरा। पहले ४० वर्षों तक उसका स्वास्थ्य ठीक न रहता था। बाद को वह बेकार भी हो गया था। उसके बाद उसने रोज आधा पेट (भूख से आधा) खाना शुरू किया और एक वर्ष के भीतर ही वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। जैसे २ उसकी उम्र बढ़ती गयी वह अपने भोजन में कमी करता गया। उसने अपने जमाने में चिरजीवन के लिये आधा पेट खाने की एक प्रणाली ही चला रखी थी जिसका खूब प्रचार हुआ था। उस प्रणाली का नाम रखा था उसने 'सेमि स्टारवेशन'। उसने चार खण्डों में 'धी टेम्परेट लाइफ' नाम की तद्विषयक एक पुस्तक भी लिखी थी जिसका अनुवाद कई जबानों में हुआ था।

इंगलैण्ड का एक किसान १७२ वर्ष का होकर मरा था। वह १२० वर्ष की उम्र में भी कड़ी से कड़ी मशक्कत करता

था। वह बहुत ही साधारण और सादा भोजन करता था और यही उसके चिरजीवन का रहस्य था।

एक दूसरा इंग्लैण्डवासी थामसपेन १५२ वर्षों तक जीया। उसके चिरजीवन का रहस्य भी सादा और सात्विक भोजन ही था।

चीन निवासी लीचिंग जून दुनिया का सबसे लम्बी आयु का व्यक्ति गिना जाता है। उसकी आयु इस समय ३०० वर्ष से ऊपर है। उसका स्वास्थ्य अब भी बड़ा अच्छा है। उसके नेत्रों की चमक, दांतों की दृढ़ता तथा पाचन-शक्ति-सब, युवकों से भी अधिक हैं। उसने अपनी लम्बी आयु के चार भेद बताये हैं:—

(१) कछुए की भांति इन्द्रियों और मन शक्ति को सिकोड़ कर एकान्त सेवन करें।

(२) कबूतर की भांति छाती तानकर आगे बढ़ें। दिल और फेफड़ों से पूरा पूरा काम लें। गहरी सांस द्वारा शरीर की जीवनी-शक्ति बढ़ावें।

(३) सोते समय निश्चिन्त हो लें तब गहरी नींद सोवें।

(४) सदा प्रसन्न चित्त रहें। ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता आदि मनोभावों से शरीर का रक्त विषाक्त हो जाता है जिससे मनुष्य अल्पजीवी होता है।

टी जैनकिन्स सन् १५०० ई० में यार्कशायर (इंग्लैंड) में पैदा हुआ था और १७० वर्ष की आयु पाकर सन् १६७० ई० में मरा। उसकी शारीरिक गठन और क्रियाशीलता उसके

अन्तिम दम तक ठीक दशा में और बहुत अच्छी रही। वह दिन में सदा एक बजे भोजन करता था और रोटी, शहद, मक्खन और फल खाता था, रातको केवल दूध और फल लेता था। उसका जीवन बहुत सादा था।

न्यूकसबरी (इंग्लैण्ड) के मि० हारवर्ट ग्रीन १०० साल के ऊपर के हो गये हैं। वह इंग्लैण्ड के सबसे बूढ़े कम्पनी डाइरेक्टर हैं। उनके सबसे बड़े पुत्र की आयु ७० साल है। मि० ग्रीन इस उम्र में भी स्वस्थ और प्रसन्न हैं। वह रोज सायं-प्रातः नियमपूर्वक सैर को निकलते हैं। वह चश्मा नहीं लगाते। अपने चिरजीवन का रहस्य बताते हुये मि० ग्रीन ने कहा—"मैं सदा निश्चिन्त रहा हूँ। खान-पान में बहुत संयम रखा है। चाय और शराब मैंने कभी नहीं पी। मांस से मुझे घृणा है और फल तथा साग-सब्जियां मेरा मन भाता खा जा रहे हैं। सुबह-शाम सैर करता हूँ। क्रोध और चिन्ताओं से सदा बचता हूँ। मैंने आजतक कभी किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं किया। मुझे सदा दो बातों से प्यार रहा है—छोटे बालकों को सद्‌शिक्षा मिले और बूढ़ों की उचित देखभाल हो।

१५४ वर्षीय मास्को निवासिनी एक रूसी महिला लियूबोव से जब उसके चिरजीवन का रहस्य पूछा गया तो उसने बताया—"मैं यह नहीं जानती कि मेरी इतनी बड़ी उम्र खुराक के कारण है या किसी और कारण। पर मैंने गोश्त

कभी नहीं खाया। अभी तक मैं सब काम अपने हाथों करती हूँ। मेरे परिवार में अकेले मैं ही ऐसी नहीं जो १०० वर्ष से अधिक उम्रवाली हूँ। मेरा एक भाई ११८ वर्ष का है, दूसरा ११२ वर्ष का और मेरी एक छोटी बहन की उम्र ११२ वर्ष है। मैं आधी रात को सोने जाती हूँ और ६ बजे सवेरे उठ जाती हूँ।

संसार का सबसे धनवान् व्यक्ति जान राकफेलर जब १०० वर्ष का हो चुका तो उसने बताया कि उसके चिरजीवन का रहस्य जीवनभर प्रगाढ़ परिश्रम करना है। वह एक पत्नीव्रत था जिससे वह बहुत प्रेम करता था। उसका खान-पान अत्यन्त सादा था—केवल रोटी और पीने के लिये ठंडा पानी।

मेक्सिको निवासिनी १३२ वर्षीय महिला मार्टिना डिला रोजा ने अपने चिरजीवन का रहस्य बताते हुये लोगों को आगाह किया था कि यदि कोई चिरजीवी होना चाहता है तो उसे अति श्रम से बचना चाहिये। इस महिला के १३ बच्चे हैं जिनमें सबसे छोटे की अवस्था ५८ वर्ष की है जो इस वक्त उत्पन्न हुआ था जब उसकी मां ७० वर्ष की हो चुकी थी।

६ संतानों, १२ पौत्रों, तथा १४ प्रपौत्रों वाली १०० वर्षीय मिसेज पीटर ड्रमंड का कहना है कि मद्यपान से घृणा तथा हर समय काम-काज में व्यस्त रहना ही उनके चिरजीवन का वास्तविक रहस्य है।

मिसेज एन स्टेन्सल अवस्था १०९ वर्ष—"मेरे चिरजीवन का रहस्य है—काम करना और सन्तुष्ट रहना।" इस महिला ने अपने समस्त जीवन में केवल एक बार सिनेमा देखा, मोटर कार पर चढ़ी और वायुयान में उड़ी।

फ्रान्सीसी सर्जन डा० ग्यूनाट : अवस्था १०३ वर्ष—"मैंने प्रतिदिन दूरतक टहलने का नियम बना रखा है। अधिक भोजन करने का मैं अभ्यासी नहीं। भोजन के साथ मक्खन, अण्डा और थोड़ा मांस लेने का मैं आदी जरूर हूँ। हर मौसम में ताजा फल खाना पसंद करता हूँ। मेरी धारणा है कि ८५ वर्ष तक की अवस्था में मरने वाला व्यक्ति अति भोजन के कारण ही मरता है। चिरजीवन के लिये गहरी सांस लेना और व्यायाम अत्यावश्यक हैं। देहातका जीवन चिरायु-प्राप्ति के लिये सबसे बड़ी गारण्टी है; क्योंकि देहाती जीवन का अर्थ है विशुद्ध वायु में सांस लेना।" फ्रान्स के एक ग्राम के अधिवासियोंकी संख्या केवल ३३० है, जिनमें १४ की अवस्था १०० वर्ष की है। यह सर्जन उसी ग्राम का एक अधिवासी था।

जर्मनी की जलवायु चिरजीवन के अनुकूल है। नाजी जर्मनी में १२४ मनुष्य १००-१०० वर्ष की आयु वाले हैं, जिनमें ८१ स्त्रियां हैं। इन स्त्रियों में केवल एक स्त्री अविवाहिता रही है, बाकी सब स्त्रियां बड़े २ कुटुम्बों की माताएँ हैं। इन लोगों ने विवाह और कठिन परिश्रम को चिरजीवन का असल नुस्खा बताया है, तथा मांस और मादक द्रव्यों से परहेज करने को।

तुर्क अहमद बे : अवस्था १३५ वर्ष। इस व्यक्ति ने अपनी जीवन चर्य्या के बारे में लिखा है—"जब कभी मैं बाहर घूमने जाता हूँ तो झरने से जल पिया करता हूँ। ठंडे जल में स्नान करना मैं बहुत पसंद करता हूँ। मैं कभी बीमार नहीं पड़ा। केवल दो बार सिर में सर्दी लग गई थी जो प्रचुर मात्रा में जल पीने से दूर हो गयी, मैं मछली, मांस, फल, तरकारी सब कुछ खाता हूँ, और चाय तथा कहवा प्रतिदिन पीता हूँ। मठा मेरा प्रिय पेय है, इसे भी मैं प्रतिदिन पीता हूँ।"

चीन के क्यूचू प्रान्त के टाटिंग जिले में एक ऐसा गाँव है जहां के अधिकांश निवासी १०० वर्ष से अधिक अवस्था के हैं उन्हीं में से एक चीनी की अवस्था १८० वर्ष की है। इस व्यक्ति का रोज का काम केवल लकड़ी तोड़कर बेचना है। इसे नींद खूब आती है। सूर्योदय के बाद ही शय्या त्यागना इसका १६० वर्षों से नियम हो रहा है।

१२६ वर्षीय नागापट्ट निवासी शेख इस्माइल ने अपने चिरजीवन का रहस्य बताते हुये बयान किया—"मैं प्रतिदिन ५ बजे सवेरे उठता हूँ और भगवान् का नामस्मरण करता हूँ। चाय का मुझे शौक नहीं है। सिग्रेट-बीड़ी आदि की गन्ध से ही मुझे उबकाई आती है। तम्बाकू मेरे विचार से अल्पायु प्रदान करता है। इस १२६ वर्ष की उम्र में भी मैं पर्याप्त तगड़ा और आंख-कान से दुरुस्त हूँ। सुबह शीतल मंद समीर के झोंकों में ५ मील तक बिना लाठी के सहारे नित्य घूमने में मैं अब भी दिलचस्पी लेता हूं।"

ईरान के १२६ वर्षीय मशेदी गुरबान अली का बयान है—„मैं खूब घूमता हूं। खूब दूध पीता हूं और खूब प्रसन्न रहता हूं। यही मेरे चिरजीवन का रहस्य है। मेरा एक पुत्र १०० वर्ष का है और एक पुत्री ९५ वर्ष की दोनों जीवित हैं। मैंने तीन शादियां की थीं। जब मैं जवान था तब ७ सेर रोटी खाता था और २८ मील प्रतिदिन घूमता था।"

१६० वर्षीय हेनरी जेकसनके चिरजीवन का रहस्य उसका सादा और सात्विक भोजन था। तथा १०० वर्षीय हेनरी फोर्ड ने अपना अनुभव बताते हुये कहा है कि कार्य और प्रिय जबाबदेहियां शरीर और मन दोनों को जवान बनाये रखती हैं। उसने यह भी कहा है कि मनुष्य यदि अपनी आयु के बारे में विचार करना छोड़ दे तो वह बहुत काल तक जवान बना रह सकता है।

ये अनेकों में से कुछ चिरजीवियों के उनके अपने अनुभव हैं जिनपर बारीकी से गौर करने पर चिरजीवन के वास्तविक रहस्य पर काफी प्रकाश पड़ता है और तत्सम्बन्धी बहुतसी बातों की जानकारी हो जाती है, जिनमें से कुछ बातें नीचे दी जाती हैः—

१-दीर्घ जीवियों की मानसिक और शारीरिक अवस्था मृत्युपर्यंत अविकृत रहती है

ऐसा खयाल किया जाना गलत है कि चिरजीवी लोगों का शरीर बिलकुल अशक्त हो जाता है और वे पंगु होकर

बराबर खाट पर पड़े रहते हैं, नहीं, इन चिरजीवियों में अधिकांश तो इतने कर्मक्षम होते हैं कि देख कर दंग रह जाना पड़ता है। वे बाजार से सौदा-सुल्फ लाते हैं, लकड़ी चीरते हैं, खाना पकाते हैं, तथा जीवन के और भी जो काम होते हैं वे सब करते हैं। महिलाएं जिनके बाल अभी सफेद नहीं हुए हैं, उनमें से कोई-कोई बिना चश्मा लगाये सुई में धागा पिरो लेती हैं। उदाहरणार्थ, जार्जिया में खुबलोव नाम का एक व्यक्ति है जिसकी आयु १३० वर्ष है। उसका कहना है कि वह प्रतिदिन एक सामूहिक कृषिफार्म में मेहनत मज़दूरी करता है। अर्शावा नामका एक अन्य १२४ वर्षीय जार्जियन, जिसकी मांस पेशियां अपनी लुहारी की दुकान में हथौड़ा चलाते २ और धौंकने २ कड़ी हो गई थीं, और जिसकी हथेलियां घन पीटते पत्थर जैसी हो चुकी थीं, आज छःबीसी पार करके भी एक बगीचे में बागबानी का काम करता है इन पांच बीसे और छः बीसे जार्जियनों में कितने ही कुशल कथावाचक निपुण नर्तक और निष्णात गायक भी उपलब्ध हैं।

वस्तुतः जीवन का एक सर्वोच्च शिखर भी होता है जहां वयोवृद्ध और केवल वयोवृद्ध ही पहुंच सकता है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि वृद्धावस्था किसी भी हालत में अभिशाप अथवा दुर्भाग्यपूर्ण समस्या नहीं है, अपितु जीवन का एक वरदान और गौरवान्वित करने वाली एक अलभ्य वस्तु है जिसके भागी केवल भाग्यशाली व्यक्ति ही

होते हैं। वह परिवार और उसके सदस्य सत्य हैं जिनके बीच उन्हें हर समय तथा आड़े वक्तों में विशेष रूप से, सही रास्ता दिखाने वाला कोई अनुभवी वयोवृद्ध मौजूद होता है। वयोवृद्धों का मानसिक धरातल बहुत ऊंचा होता है। वे अनुभवों के आगार होते हैं। उन्हें दुनिया के उतार-चढ़ाव का ज्ञान होता है। अतः दुनिया वालों के लिये वे बड़े काम के सिद्ध होते हैं। ऐसा केवल इसीलिए सम्भव होता है क्योंकि चिरजीवियों की मानसिक और शारीरिक अवस्थायें उनकी उम्र की बाढ़ के साथ अवनति की ओर न जाकर उन्नति की तरफ ही अधिकांश दशाओं में अग्रसर होती रहती हैं और मृत्युपर्यन्त अच्छी दशा में बनी रहती हैं। बहुत कम दशाओं में अथवा व्यक्ति के अतिशय वृद्ध हो जाने पर ही उसकी श्रवण-शक्ति आदि में विकृति आती है।

२—चिरजीवन के लिये सादा जीवन और सादा सात्विक भोजन जरूरी हैं।

अधिकांश चिरजीवियों के स्वानुभवों से यह बात स्पष्ट होती है कि चिरजीवन का रहस्य शरीर में संतुलन की अवस्था बनाये रखना है। जो सादा जीवन और निरामिष सादा भोजन से प्राप्त होती है। जबतक शरीर के अन्दर संतुलन बना रहता है तबतक हम स्वस्थ रहते हुए चिर जीवन प्राप्त करते रहते हैं। पर जब संतुलन बिगड़ जाता है तब शरीर की सारी क्रियाएं—पाचन, अभिशोषण, तथा मलविसर्जन—सामंजस्य खो बैठती हैं। फलतः शरीर पहले

रोगी हो जाता है। उसके बाद स्थिति यदि न सम्भली तो मनुष्य अल्पजीवी ही रह जाता है इसलिये समझदारी की बात यह है कि हम सादा जीवन और सादे भोजन द्वारा शरीर का संतुलन बनाये रखकर रोग की रोक थाम करें जिससे चिरजीवन की प्राप्ति सम्भव हो सके। अति भोजन न करते रहकर अल्पाहार और उपवास करना भी जीवन के विषों को जमा होने से रोकने और शक्ति को-जीवन को लम्बा बनाने के काम में लगाने का सर्वोत्तम उपाय है।

शरीर में संतुलन की अवस्था बनाये रखने से क्योंकर चिरजीवन प्राप्त होता है, इसका एक वैज्ञानिक आधार है। कुछ दिन हुये ७ धुरन्धर वैज्ञानिकों ने सोवियट रूस के भीतर उसके विविध प्रान्तों में चक्कर काटते हुए चिरजीवन की खोज में अपने जीवन के पूरे ४ साल बिताए और काकेशस प्रान्त के अवकाजिया जिले के चिरजीवी व्यक्तियों में अमपूर्ण अनुसन्धान करने के बाद वे इस नतीजे पर पहुंचे कि मानव-शरीर की हड्डियों को मज्जा से मिलने वाली जीवनी शक्ति में ही चिर व अल्प जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। वैसे तो साइबेरिया, याकूतिया, तथा जारजिया एवं युक्रेन के अन्य जिलों में कुल मिलाकर ४०००० से ऊपर ऐसे पुरुष और स्त्रियां मिलती है जिनकी आयु १०० वर्ष से अधिक है, पर काकेशस प्रान्त के अवकाजिया जिले के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वहां मेथुलेसा ९६९ वर्षों तक जीते रहे थे।

इसीलिये उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र को अपने अनुसन्धान का कार्य क्षेत्र चुना था। उन लोगों ने अपनी खोज के सिलसिले में ९० वर्ष से अधिक की उम्र वाले ३०००० से ऊपर के व्यक्तियों के जीवन की अच्छी तरह छानबीन करने के बाद ही ऊपर लिखा नतीजा निकाला था। इस नतीजे के फलस्वरूप उन डाक्टरों का कहना है कि यदि सन्तुलन और सात्विक भोजन द्वारा अस्थि स्थित मज्जा एवं रक्ताम्बु जैसे जीवन रसों को ठीक रखा जाय तो हम १०० वर्ष से अधिक अवश्य ही जी सकते हैं।

३-प्रातः सायं भ्रमण द्वारा प्राण-वायु सेवन से चिर जीवन की प्राप्ति होती है।

४-गहरी सांस लेने से।

५-शरीर और मन परस्पर संबद्ध हैं, इन दोनों को अभिन्न मान कर चले, अन्यथा जीवन असंतुलित हो जायगा और चिरजीवन प्राप्त न हो सकेगा।

६-मानसिक उद्वेग (क्रोध, भय, राग-द्वेषादि) चिरजीवन प्राप्ति में बाधक होते हैं तथा प्रसन्नता, संतोष, और दैवी सम्पदायें जीवन को लम्बी करती हैं।

७-सपरिश्रम व्यस्त जीवन से उम्र बढ़ती है।

८-शारीरिक और मानसिक शक्तियों की सुरक्षाके लिये,

जिनसे चिरजीवन की प्राप्ति होती है, शारीरिक नियमों, जैसे स्वच्छता, आसन, प्राणायाम (योगाभ्यास) नींद, आराम, मनोरंजन, संयम, तथा समुचित आहार-विहार आदि का पालन आवश्यक है।

९-नशीली और उत्तेजक वस्तुओं का सेवन न करें।

१०-किसी प्रकार का कष्ट होने पर प्राकृतिक उपायों से काम लें। दवाओं का कमसे कम व्यवहार करें।

भारत मां के वीर सपूतों,
जाग उठो तानो सीना,
मां का मुकुट हिमालय अपने,
हाथों से ना खो देना ॥ ध्रु ॥

युगों युगों की साद हमारी,
स्वतंत्रता हमने पाई,
आज चीन के इन गिद्धों ने,
दृष्टि उसपर दौड़ाई,

झपट रहे हैं आज हमारी,
मां का मुकुट छिनने को।
हम दे देंगे तन-मन-धन भी,
स्वतंत्रता को बचाने को।
जागो वीर जवानों ऐसे,
मौकों पर ना सो जाना। १ ॥

मां का मुकुट हिमालय......

दुष्ट चीनियों की सेनाएं,
अब घरमें घुसने वाली हैं।
अपना तन-मन-धन देने की,
फिर बारी अब आयी है।
उठो खून दो धन दो अपना,
जीवन भी अर्पित कर दो।

भारत वीरों की भूमि है,
यह दुनिया को दिखला दो।
जागो इन चीनियों को है,
घरसे बाहर कर देना।
मां का मुकुट हिमालय अपने
हाथों से ना खो देना ॥ २ ॥
भारत मां के वीर सपूतों,
जाग उठो तानो सीना।
मां का मुकुट हिमालय अपने,
हाथों से ना खो देना ॥
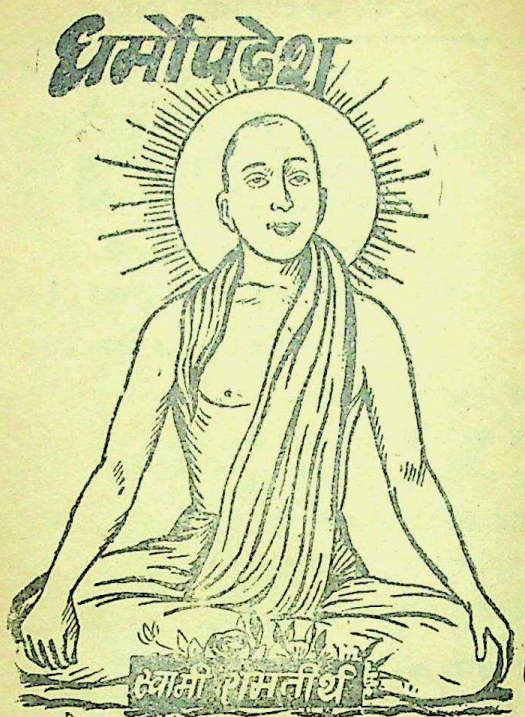
धर्मोपदेश

(गतांक से आगे)

इससे सहज ही समझ में आ जायेगा कि वेदान्त विभिन्न धर्मों का समाधान किस तरह करता है ?

परन्तु पुनर्जन्म का अर्थ क्या है ? मुक्त पुरुष किस को कहा जाता है ? वेदान्त का मत है कि मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को स्वर्ग या नरक में नहीं जाना पड़ता और प्रत्येक व्यक्ति का पुनर्जन्म भी नहीं होता। उन्हें स्वर्ग या नरक में

जकड़ना नहीं पड़ता, क्योंकि स्वर्ग और नरक-सब उनमें ही विद्यमान हैं। सभी जगत् इन्हीं में निहित हैं। इस सम्बन्ध में कुछ यहां कहेंगे।

स्वप्न में दो प्रकार की वस्तुएं होती हैं—एक कर्ता और दूसरा कार्य अथवा एक भोक्ता और दूसरा भोग्य। एक तो समग्र दृश्य-प्रपंच देखने वाला द्रष्टा और दूसरा उससे भिन्न समग्र दृश्य-प्रपंच। वेदान्त का कहना है कि भोक्ता और भोज्य तथा द्रष्टा और दृश्य दोनों हम स्वयं ही उत्पन्न करते हैं। वार्तालाप करने वाला प्रसिद्ध डाक्टर जानसन कभी वादविवाद में स्वयं को पराजित देख न सकता था। सदैव स्वयं विजयी हो, ऐसी उसकी तीव्र इच्छा रहती थी। यदि कभी कोई वाद-विवाद में उसे जीत लेता तो वह आकाश-पाताल एक कर डालता। एक बार उसे स्वप्न हुआ कि महान् वक्ता एडमण्डबर्क ने उसे वाद-विवाद में हरा दिया है। जानसन को यह असह्य हो गया। स्वप्न में से वह एक-दम जाग पड़ा और अत्यन्त अस्वस्थ हो उठा। उसे किसी तरह भी नींद नहीं आई। मन सदैव विश्राम की मांग करता शान्ति मांगता है और जब बाधा पहुंचती है, तब किसी भी तरह वह शांति-प्राप्ति के प्रयास करता है। इससे जानसन को विचार हुआ कि यदि अभी बर्क को उठाकर पूछूं कि—'तुम्हें किस स्तर पर किन तर्कों से मुझे पराजित किया?' तो बर्क उसका उत्तर दे नहीं सकता। मैं स्वयं जानता हूं कि उसने कौन-से तर्क उपस्थित किये और मेरे तर्क कितने निर्बल थे। अतः यह तो मात्र मैंने स्वयं ही अपने मस्तिष्क से

तर्क उत्पन्न किये हैं और मैं स्वयं ही जानसन तथा एडमण्ड बर्क बना था।

वेदान्त का कथन है कि स्वप्न में मनुष्य स्वयं ही कर्ता और कार्य, भोक्ता और भोग्य बनजाता है। मानवीय आत्मा स्वयं ही नदी, नाला, पर्वत; वन, पशु-पक्षी आदि रूप में बनता है, स्वयं ही सब कुछ उत्पन्न करता है, स्वयं सब कुछ देखता है, भोग करता है।

इस प्रकार वेदान्त के सिद्धान्तानुसार मृत्यु रूपी प्रगाढ़ निद्रा में आप स्वयं ही स्वर्ग और नरक हैं, आप स्वयं ही भोक्ता और भोग्य हैं। इस प्रकार भोक्ता और भोग्य एक ही हैं, यह जब बुद्धिपूर्वक हृदयंगम करेंगे, इस प्रकार जब साक्षात्कार होगा, तभी मुक्तावस्था प्राप्त होगी।

एक स्त्री ऐसा ही वेदान्त का ज्ञान रखती थी। प्रशस्त राजपथ पर वह एक हाथ में अग्नि और दूसरे हाथ में पानी लेकर जा रही थी। लोगों ने यह विचित्र वेश देखकर पूछा "अरे! बहन, यह क्या ?' स्त्री ने कहा—'इस अग्नि से तुम्हारे स्वर्गों और वैकुण्ठों को भस्म कर देने जा रही हूं और इस पानी से दग्धमान नरकों को शीतल-शांत करने जा रही हूं। जो मनुष्य जानता है कि स्वर्ग और नरक अपने मन की कल्पना से व्याप्त हैं, उसे ऐसे स्वर्ग और नरक के उजड़ने या बसने का विषाद् या हर्ष नहीं होता, वह तो इन दोनों से परे है। यह जाग्रदवस्था क्या है ? वेदान्त प्रमाणित करता है कि यह जगत् दृश्य जगत् भी असत्य है, यह भी

मात्र स्वप्न ही है। जाग्रदवस्थाके इस स्वप्न और निद्रावस्थाके स्वप्न में मात्र थोड़ा बहुत अन्तर है। जगत् और जगत्-द्रष्टा यह दोनों आत्मा की अपनी निजी कृतियां हैं। आत्मा ही बड़े शहरों, पर्वतों, वनों, नदी आदि को बनाते हैं और उन्हें देखनेवाला, उनमें भटकने वाला भी वह स्वयं ही है। तो अब वास्तविक मृत्यु का अर्थ मात्र कर्ता-भोक्ता का अन्तर्ध्यान होना ही है। सोते हैं किसी एक स्थान पर और स्वप्न में स्वयं को पाते हैं किसी दूसरे ही स्थान पर। कभी दोहरी नींद आती है, दोहरे स्वप्न आते हैं। स्वप्न में भी हम स्वप्न देखते हैं। एक स्थान पर सोते हैं और स्वप्न में हम दूसरे ही स्थान पर अपने को पाते हैं और अन्य किसी स्थान पर सोने पर फिर स्वप्न देखते हैं, ऐसा जान पड़ता है। इस प्रकार दोहरे स्वप्न होते हैं। उसमें कर्ता स्वयं अन्तर्ध्यान होता है और वस्तु ही रहती है। जागने पर सब अदृश्य हो जाता है। कर्ता और कर्म, भोक्ता और भोग्य सब कुछ लुप्त हो जाता है। परन्तु स्वप्न में मात्र भोग्य अकेला ही दिखाई देता है।

अब वेदान्त के अनुसार जाग्रदवस्था में जो यह जगत् दिखाई देता है, वह भी एक स्वप्न ही है और काल, आकाश शरीर, अहंभाव आदि जो वस्तुएं दिखाई देती हैं, यह कार्य है। भोग्य हैं। एक सामान्य मनुष्य की मृत्यु होने पर क्या होता है? इससे कुछ माया-अविद्या का नाश नहीं होता। यह तो वैसी की वैसी ही रहती है। मात्र कर्ता ही अन्तर्धान

होता है, कर्म का अस्तित्व तो पूर्ववत् विद्यमान् रहता है। इस प्रकार इस लोक में मृत्यु हो जाने परलोक में यह जीवजाग्रत होता है। मृत्यु-काल में जो जगत् दृष्टिगोचर होता है, जाग्रत होते ही वही पुनः दिखाई देता है। अब यहां पुनः ८०-९० वर्ष जीता है और फिर दिवंगत होता है। परिणाम यह होता है कि पुनः वह पुनर्जन्म धारण करता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म, जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। कर्ता और कार्य, भोक्ता और भोग्य दोनों के अन्तर्ध्यान होने तक यह चलता ही रहेगा। जब तक जगत् को मनुष्य स्वयं से भिन्न मानेगा, तब जन्म-मृत्यु चलता ही रहेगा।

वेदान्त का कथन है कि कर्ता और कर्तव्य, भोक्ता और भोग्य इन दोनों को जो आत्मा में ही देखता है, वही इस जन्म-मृत्यु के चक्र से बच जाता है। जानसन की तरह जाग उठने वाले स्वप्न के कर्ता और कार्य, भोक्ता और भोग्य हम ही हैं, यह समझेंगे, तभी मुक्त होंगे। 'जगत् मेरा शरीर है। अखिल विश्व मेरा शरीर है।' यह जो कह सकता है, वही मुक्त है। यह मुक्त पुरुष कहां जाता होगा? मुक्त पुरुष को कहीं भी जाना नहीं पड़ता। ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहां वह स्वयं नहीं है। जब कि वह स्वयं ही अनाद्यनन्त है, तब उसे जाना कहां रहा? समग्र जगत् उसमें समाया हुआ है। हिन्दुस्तान में प्रत्येक बालक जन्म धारण कर ऐसी ही जिज्ञासा रखता है।

मिल्टन के जीवनचरित्र में एक स्त्री के सम्बन्ध में सुन्दर बात लिखी है। इस स्त्री ने स्वप्न में अपने स्वामी को देखा और देखते ही उसे असीम आनन्द हुआ। वह पति के गले से लिपट कर बोली—'मैं तुम्हारी ही हूं और मेरा सर्वस्व तुम्हारा है।' इतना कहते ही वह जाग्रत हो गई और देखा कि उसके साथ शय्या पर एक कुत्ता सो रहा है और वह स्वयं ही उसके गले लग गई थी। वेदान्त का कहना है कि जबतक इस प्रकार मनुष्य अज्ञान-अविद्यारूपी कुत्ते से चिपका रहेगा, तबतक ऐसे स्वप्न आते ही रहेंगे। और मनुष्य अस्वस्थ रहेगा, उसे शांति नहीं मिलेगी, जगत् दुःखदायक प्रतीत होगा, अतः माया-अविद्या को त्याग दो और स्वयंभू बनो! तुम स्वयंभू हो, यह विश्वासपूर्वक मानो और तदनुसार आचरण करो-साक्षात्कार करो! तो तुम फिर मुक्त पुरुष ही होगे।

पुनर्जन्म और कौटुम्बिक बन्धन

भारत में एक धनाढय व्यापारी अपने गांव में एक बड़े समुदाय को भोजन कराना चाहता था, क्योंकि उसके यहां कोई शुभ प्रसंग था। पूर्वकाल में कोई शुभ प्रसंग उपस्थित होनेपर गणिकाओं का नृत्य भी कराया जाता था, अब इसका विशेष प्रचार नहीं। इस व्यापारी के यहां नाच देखने के लिये जनता एकत्र थी। एक नर्तकीने अपना गायन और नाच प्रारम्भ किया। गायन अत्यन्त अश्लील था और उसमें रुचि लेनेवाला शायद कोई भी नहीं होता, परन्तु इस अवसर

पर तो वह विशेष कर सभी सुननेवालों के हृदय में गहरा उतर गया। भारत में अधिकांश पण्डित, सुशील और संभ्रान्त जन ऐसे गीतों की ओर रुचि प्रकट नहीं करते। फिर भी, इस समय तो सभी मुग्ध हो उठे। उस घटना के महीनों बाद भी जिन्होंने वह गीत सुना था, वे रास्ता चलते भी उसका गुंजन करने लगते। अब प्रश्न यह होता है कि इतना बड़ा मोह किस वस्तु पर था। जिससे भी पूछा जाता, वह यही कहता कि गायन अत्यन्त सरस और मुग्धकारी है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं थी। गणिका के गाने से पहले यही गीत अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता था और अब उन्हें यह अत्यन्त प्रिय और आनन्ददायक प्रतीत होने लगा। वास्तविक कारण यह था कि गायन में मोहाकर्षण न था, बल्कि गायिका के कण्ठस्वर और निपुणता में ही मनको मुग्धकर लेनेवाला गुण विद्यमान था। इसके अतिरिक्त गायिका की गायन-कला में भी मोहिनी थी। सच्चा मोह तो गायिका में ही था, इसी· लिये गायन माधुर्य, मिठास से ओतप्रोत मालूम होता था। जगत् में इसी प्रकार होता है। कोई खूबसूरत शिक्षक हो, मधुर कण्ठस्वर हो, नेत्रों से अमृतवर्षा होती हो, ऐसा पुरुष जो कुछ बोलता है, हलचल करता है, वह सबको प्रिय होगा ही। जगत् की यह भूल है। सत्य की खोज करना किसीको भी अभीष्ट नहीं। मूल गायन या वचनों आदि में क्या सत्यता है, उसकी खोज की कोई अपेक्षा नहीं रखता, मात्र यह बात हृदय में धारण करते हैं कि कौन बोल रहा है। एक बार मेरे एक मित्रने स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में कहा—

"स्वामी विवेकानन्द के मुख की ओर निरन्तर अपलक देखते रहने की ही इच्छा रहती है। उनकी आँखें और नाक आदि कितने सुन्दर हैं।" लोग भाषण सुनने जाते हैं, तो भाषणकर्ता की मुखाकृति देखने जाते हैं कि उसका भाषण सुनने? किसी भी भाषणकर्ता के वचनों को हृदयंगम करना चाहिये, न कि उसकी मुखाकृतिपर विचार करना चाहिये। मैं शरीर का पक्षपाती नहीं। मेरा कथन कदाचित् आपको कर्णकटु लगेगा, किन्तु देखना यह चाहिये कि सत्य क्या है?

आज का विषय शुरू करने से पहले बाइबल, कुरान, गीता, वेद आदि पर भी कुछ कहने की आवश्यकता है। इन पुस्तकों में जो कुछ लिखा है, उसे लोग आंख मूंदकर मानते हैं, क्योंकि वे पुस्तकें महापुरुषों द्वारा लिखी गई हैं और उन्हें वे पूर्णभाव से पूजते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि मानव स्वयं अपने समय में अत्यन्त विख्यात और श्रेष्ठ जीवन बितानेवाला हो गया हो, परन्तु उसके वचन, उसकी शिक्षा सर्वकाल के लिये सम्पूर्ण नहीं होती। दुनिया ऐसी भूल करती ही आ रही है। किसी मनुष्य ने कहा—इसीलिये उसे सत्य मानना बहुत बड़ी भूल है, अतः अनेक प्रकार के वादविवाद और खण्डन-मण्डन की उत्पत्ति होती है। ओलिवर गोल्डस्मिथ के सम्बन्ध में डा० जानसन कहते हैं कि जब वह लिखने बैठता, तब एक दिव्य पुरुष देव के समान लिखता, परन्तु इस ओलिवर गोल्डस्मिथ को यही धुन थी और वह यहांतक दुराग्रह रखता कि कोई बात ही नहीं।

उसका कहना यह था कि जब मैं खाता हूँ, तब मेरा केवल ऊपर का ही जबड़ा हिलता है, नीचे का नहीं। यह बात सभी समझ सकते हैं। जब हम बोलते हैं, भोजन करते हैं तब सदैव निचला जबड़ा ही हिलता है ऊपर का नहीं। वास्तविकता यह है, फिर भी मनुष्य जो कुछ कहता है, बोलता है, लिखता है, वह सदा ही सत्य नहीं होता।

कार्य और कार्यपद्धति का विज्ञान यह दोनों जानने चाहियें। इन दोनों में बड़ा अन्तर है। अनेकशः लोग अंगरेजी भाषा में संभाषण करना जानते हैं, परन्तु उस भाषा का व्याकरण नहीं जानते। बहुतेरे लोग तर्क-युद्ध और वाद-विवाद करते हैं, परन्तु इनमें से थोड़े लोग ही तर्क-शास्त्र का ज्ञान रखते हैं। इसी प्रकार एक विशेष उच्च जीवन व्यतीत करना भिन्न बात है, परन्तु उस जीवन में जो तत्त्वज्ञान पाया जाता है, उसके सम्बन्ध में कुछ कहना भिन्न स्थिति है। जगत में यह बहुत बड़ी भूल ही की जाती है कि लोग महापुरुषों के उपदेश और चारित्र्य की परस्पर तुलना करते हैं और तदुपरान्त उस बोध के अनुचर बन जाते हैं। मेरा—'राम' का—कहना है कि बन्धुओ, सावधान! अपनी बुद्धि का भी उपयोग करो।

ईसा की लिखी पुस्तकें बहुत कम हैं, परन्तु महान् तत्त्वज्ञ और विद्वान् इन बोध वचनों पर शिर पटकते हैं मुहम्मद पैगम्बरने बहुत ही थोड़ा कहा है। फिर भी इस प्रज्ञा—इस ज्ञान—इस स्मृति का उद्‌भव कहां से हुआ, यह

कोई नहीं जान सका, परन्तु बन्धुओ! यही ज्ञान, यही प्रेरणा आपके आत्मा में भी विद्यमान है। महर्षि मनु के पास कोई पुस्तक नहीं थी, फिर भी उसने मानवों के लिये अद्भुत स्मृति-ग्रन्थों की रचना की। होमरने इलियड और ओडिसिस-जैसे महाकाव्यों की रचना की, उस समय कौन-से साधन उसके पास थे? एरिस्टोटल एम०ए० अथवा पीएच० डी० न था। फिर भी, कितने ही एम०ए० या पीएच०डी० उसके शिष्य हैं। श्रीकृष्ण और ईसा आदि महान् योगि-योगियों को कहां से प्रेरणा प्राप्त हुई थी? मात्र अपने ही अन्तःकरण से---अन्तःकरण में अवलोकन करो---वहीं प्रभु प्राप्त होगा परम सत्य प्राप्त होगा। कबीर किस पाठशाला में पढ़ने गया था? नानक, तुकाराम, तुलसी, नरसिंह ने किस स्कूल में शिक्षा ग्रहण की थी। परन्तु इनके पद---इनके बोध-वचन पढ़ते हुये स्कूल के महान् छात्रों को भी मस्तिष्क की कसौटी करनी पड़ती है। इस प्रकार जब ऐसे पुरुष अवतारों की प्रतिष्ठा पा सकते हैं तो हम भी तदनुवर्ती आचरण से क्या उनके समान नहीं बन सकते? निस्सन्देह हम भी इसी प्रकार कर सकते हैं। जो चित्त, जो हृदय, जो प्रेरणा, जो ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ था, वह हमें भी कुछ दुर्लभ नहीं। मात्र पुरुषार्थ की ही आवश्यकता है। अमृतकुण्ड सबके हृदयों में भरा हुआ है, उसे सभी पी सकते हैं, अतः निराशा से खिन्न न होकर आशापूर्ण पुरुषार्थ कर अच्युतानन्द का साक्षात्कार करें।

—क्रमशः

—:o:—

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में वह क्षण कभी न कभी या अक्सर आया करता है जब वह यह महसूस करता है कि उसके तमाम अरमान, आशाएं और उमंगें नष्ट होती नजर आती हैं जिस भविष्य की कल्पना एवं चित्र हम बनाये बैठे हैं। उसमें जरा सी भी दैविक बाधा आने पर वह चित्रित महल ढह जाता है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति जो एम. ए. की परीक्षा दे रहा है उसके अपने विचार कि एम ए. पास करके, किसी अमुक कार्य को वह करेगा, तब वह खूब धन कमायेगा और आराम से जिन्दगी गुजारेगा, बना रखा है परन्तु दैव योग से वह परीक्षा में असफल हो जाता है तब उसके तमाम अरमानों के महल ढह जाते हैं और वह निराश होकर दुबारा प्रयत्न नहीं करता है। बहुत से लोगों को निराशा पल पल पर

महसूस होने लगती है और फिर वह उन्नति की आशा छोड़ कर अकर्मण्य बन जाता है। इस प्रकार निराशा के क्षण प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते ही रहते हैं।

निराशा के इन क्षणों में हम सबसे बड़ी गलती यह करते हैं कि हम अपनी असफलताओं की तुलना दूसरों की सफलता से करते हैं। तब यह विचार होना स्वाभाविक है कि क्या दुनिया की तमाम कठिनाई हमारे ही भाग्य में आई है? किन्तु नहीं, आइये जरा इस विषय पर गहन अध्ययन करें।

निराशा एक मानसिक अवस्था है, निराशा के तीन प्रकार हैं (१) हार की भावनाः—जब हमारी मन चाही वस्तु नहीं मिल पाती है तब हमारा मन दुखी हो जाता है और हम निराश हो जाते हैं।

(२) जिन्दगी के महत्व के प्रति अत्यधिक उदासीनताः— हम सोचने लगते हैं कि जिन्दगी झूठ, अर्थ हीन तथा निरुद्देश्य। ऐसे वे लोग हैं जिन्हें यही नहीं पता कि हमारे जीवन का क्या उद्देश्य है?

(३) निराशा का तीसरा एवं अन्तिम प्रकार है घोर भयानक पीड़ा एवं डर महसूस करना, इस प्रकार के निराश व्यक्ति में आत्म विश्वास नहीं होता उसे प्रत्येक क्षण क्षण में भय एवं चिन्ता और अविश्वासका महसूस होता है।

निराशा सिर्फ हमारे विचारों तथा भावनाओं पर ही

असर नहीं डालती बल्कि हमारी जिन्दगी की ही दिशा को मोड़ देती है इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं यह सृजन के स्थान पर विनाश को जन्म देती है, शारीरिक रोग, अपराध और आत्म हत्या तक लोग कर लेते हैं जीवन से निराश होकर।

निराशा सबसे पहले शारीरिक रोग उत्पन्न करती है इससे मानसिक सन्तुलन खराब हो जाता है। पाचन शक्ति खराब होती है नींद नहीं आती। घोर निराशा से आदमी चिंता करने लगता है। जीवन में हार कर हर कदम पर निराश होकर लोग असामाजिक काम करने लगते हैं। नौकरी नहीं मिलती तो जेब काटने लगते हैं, चोरी करने लगते हैं। लेकिन यदि ऐसे मनुष्य में कोई आशा नहीं उसे जिन्दगी जहर लगती है वह ऐसी जिन्दगी से मौत अच्छी समझता है तो ऐसा क्यों? क्या उसे इस सब से छुटकारा मिल सकता है क्या वह फिर उन्नति एवं सर्व सम्पन्न होने की आशा कर सकता है? अवश्य, काले बादलों में आशा की किरणें फूट सकती हैं उसे निराशा से मुक्ति मिल सकती है उसकी निराश जिन्दगी आशावान् बन सकती है, उसकी जहरीली जिन्दगी अमृतमयी बन सकती है, कैसे? यदि वह (निराश व्यक्ति) अपनी विचार धारा बदल दे। इसके लिये उसे कुछ आत्म अध्ययन करना पड़ेगा तथा कुछ तथ्यों को समझना पड़ेगा।

सर्व प्रथम निराश व्यक्ति को यह समझना है कि जीवन द्वन्द्व की आधार शिला पर टिका है जीवन में जहां दुख है

वहां सुख भी, जहां असफलता है वह सफलता भी, जहां हानि हैं वहां लाभ भी। हर रात के बाद सवेरा आता ही है। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जिसे एक ही सी स्थिति सदा मिली हो। जिन्दगी में दुख के साथ सुख भी है। एक शायर के शब्दों में:—

जिन्दगी की हसीन वादी में,
सिर्फ कांटे ही नहीं फूल भी हैं।

इसलिये दुख के क्षणों में यह सोच लो कि:—

इशरत के जमाने जब न रहे,
गम भी न रहेगा दीवाने।
यह अब्र भी छटने वाला है,
यह रात भी ढलने वाली है॥

इसलिये जब दोनों ही परिस्थितियों से प्रत्येक मनुष्य को गुजरना पड़ता है तो सुख, सफलता, यश और लाभ में खुशी क्यों? और असफलता, दुःख और हानि, अपयश, मृत्यु में दुःख क्यों? निराशा क्यों? इसलिए यदि सुख के क्षणों में दुख और दुख के क्षणों में सुख को याद रखे, आशा रखे तो निराशा से छुटकारा मिल सकता है।

निराशा को दूर करने का दूसरा उपाय है, अपने आप को समझना और अपनी भावनाओं के बिगड़े हुये सन्तुलन को ठीक करना। विशेष रूप से नवयुवक ही निराशा के शिकार होते हैं। होता यह है कि परिवार के स्नेहमय वाता-

वरण से निकल कर ऐसी दुनिया में आते हैं जहां हर समय संघर्ष होता रहता है। वे सोचते हैं जैसे घर के लोग उनकी सहायता करते हैं वैसे ही बाहर के लोग भी उनसे व्यवहार करेंगे, पर ऐसा नहीं होता। परन्तु हमें अपनी असफलता के कारणों को खोज करनी चाहिये।

आत्मज्ञान के बाद हमें अपनी भावनाओं को सन्तुलित करना है। दूसरों से अधिक आशा मत करो, अपने ऊपर निर्भर रहना सीखिये। एक होता है पेड़ जो अपनी जड़ पर खड़ा रहता है एक होती है लता जो छप्पर का सहारा लेती है हवा का झोका आया की जमीन पर आ पड़ती है। पेड़ बनने की कोशिश करो न कि लता बनने की।

निराशा को दूर करने का एक और उपाय है व्यस्तता-हर समय काम में लगे रहो। चाहे आप जिस स्थिति में हों समाज के कल्याण में अपना सहयोग दो।

दृढ़ विश्वास और परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने का संकल्प और साहस भी निराशा को दूर करता है अक्सर निराशा बाहर नहीं भीतर उत्पन्न होती है, बीमारी दुख, इन परिस्थितियों के प्रति हमारी क्या प्रतिक्रिया है इस बात पर निर्भर करती है यदि आप में आत्म विश्वास की कमी है तो आप इन कठिन परिस्थितियों में हार कर निराश हो जायेंगे। अगर आप में आत्म विश्वास है इन कठिन परिस्थितियों को बदलने के लिये साधन जुटायेंगे। एक बार सफल होंगे तो उत्साह बढ़ेगा।

हर आदमी के अन्दर समुद्र की सी असीम गहराई छिपी है जो इस गहराई को पहचान लेते हैं वे सतह की उत्थल पुथल से नहीं घबराते ।

तीरगी अपने मुकद्दर की मिटाने के लिये,
छीन कर चांद सितारों से उजाला ले लो।
चलो तो सारे जमाने को साथ लेके चलो।

जिसको प्रभु में विश्वास है उसे उस घड़ी की प्रतीक्षा करनी चाहिये जो देर से आये या सबेरे से पर आयेगी जरूर। भगवान् के घर देर है अन्धेर नहीं।
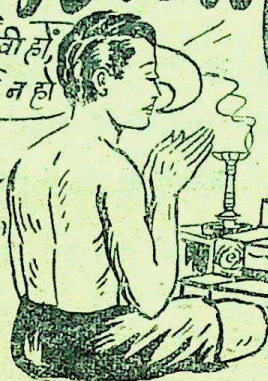
अंग्रेज विद्वान् शेक्सपियर कहा करते थे कि "मन एक उद्यान है, जिसमें आप चाहें तो सुन्दर पुष्प विकसित करें चाहे इसे उजड़ा पड़ा रहने दें। यदि उसमें अच्छे बीज नहीं डाले जायेंगे तो बहुत से निकम्मे बीज अपने आप गिर जायेंगे और जंगली घास पैदा कर देंगे। बाग के माली की भाँति आप उसमें सद्विचार रूपी पेड़-पौधे लगाइये तथा बुरे और निकम्मे विचारों को निकाल फेंकिये।' सद्विचार ही विचार हो सकता है। इससे परे को विचार कहना उसका अपमान करना है। हमारे ऋषि-मुनियों ने विश्व के सम्मुख जो उद्देश्य रखा है वह है—'मानव-कल्याण।' सबका मन शुभ संकल्प वाला हो, सब सुखी हों, दुःखी कोई न हो। सबका कल्याण हो। भारतीय ऋषि-मुनियों ने केवल देश का

ही कल्याण नहीं चाहा। साथ ही विश्व के कल्याण में ही अपना कल्याण माना। यथा:--

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

जिसके विचार शुद्ध और पवित्र हो गये हैं उनका मन पूर्ण नियंत्रण में रहता है। आपके मन-मन्दिर में यदि गन्दे और अपवित्र विचार घुस गये हों, तो उसे बिल्कुल निकाल फेकें। जबतक अपवित्र विचार के बीज आपके अन्दर रहेंगे तबतक आप शान्ति का अनुभव नहीं कर सकते। आपका प्रत्येक विचार धनात्मक (पोजीटीव) होना चाहिये, ऋणात्मक (निगेटीव) नहीं--रचनात्मक होना चाहिये, विध्वंशात्मक नहीं। सद्विचार हृदय, मन एवं आत्मा को शक्ति प्रदान करता है। दृढ़ संकल्प का प्रथम सोपान शुभ विचार है। यदि आप शाश्वत शान्ति चाहते हैं, तो सर्वप्रथम 'सद्विचार' को जाँच की कसौटी पर कस कर ही देखें। विश्वास दिलाता हूँ कि आपको असीम शान्ति मिलेगी। तब देखें कि जो जीवन और जगत् आपको पहले बोझिल और दुःखदायी प्रतीत होता था, अब सुखधाम और स्वर्गभूमि बन जायगा। अतः उत्तम यही है मन को सदा शुभ-चिन्तन में लगावें। मन का स्वभाव ही है संकल्प-करना। यह अत्यंत चंचल है। यदि इसे कोई काम न मिले तो व्यर्थ इधर-उधर भटकने लगता है। दुर्दान्त पशु-प्रवृत्ति घर कर जाती है। शैतान का वास-स्थान बन जाता है। पश्चात् इसका भयंकर परिणाम होता है। श्री सुदर्शन लिखते हैं "मन बड़ा चंचल

है। यदि काम न हो, तो इधर-उधर भटकने लगता है और अपने स्वामी को विनाश के मार्ग में डालकर मार डालता है। इसे भक्ति की जंजीरों से जकड़ देना चाहिये, नहीं तो सर्प बनकर डस लेता है और बिच्छू बनकर काट खाता है।" देखा आपने मलिन और अपवित्र मन की करामात! शुक्ल यजुर्वेद में भी ऐसे श्लोक आये हैं जिनमें यजमान प्रार्थना करता है कि मेरा मन शुभ-संकल्पवाला हो।

"ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मन: शिव संकल्प मस्तु॥

अर्थात् जो मन अनुभव, चिन्तन और धैर्य कराता है, जो इन्द्रियों में एक अमर ज्योति है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो। रचनात्मक कल्याणकारी विचार ही मनुष्य का मित्र है और रचना शून्य अकल्याणकारी विचार ही शत्रु है। शत्रु-मित्र का निर्माता स्वयं मनुष्य है। जहाँ कल्याणकारी सद्विचार मानव को सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द, आरोग्य और कल्याण की प्राप्ति कराता है, वहाँ अकल्याणकारी विचार ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, दु:ख, दारिद्रय और अशान्ति का कारण बनता है। इससे सिद्ध है कि जिसके पास क्रियाशील मस्तिष्क है वह संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु का स्वामी है। अपना विचार ही मनुष्य को जिन्दा रखता है और अपना विचार ही उसे मारता है। मस्तिष्क से ही अच्छे-बुरे विचार पैदा होते हैं। विचार-यंत्र के गलत प्रयोग से नाना प्रकार की मानसिक बीमारियां पैदा होती हैं। असंतुलित मन कष्टों में घसीटनेवाला होता है। आप जरा

पागलखाने की झाँकी देखें। मस्तिष्क में वर्षों के इकट्ठे गन्दे विचार ने 'विचार-यंत्र' को निष्क्रिय बना डाला है। शरीर से हृष्ट-पुष्ट परन्तु मस्तिष्क-संतुलन का बिल्कुल अभाव। ऐसे पुरुष विवेकशून्य हो जाते हैं। ऐसे पुरुषों की मनस्थिति का वातावरण के साथ कोई सामंजस्य नहीं रहता। मनोवैज्ञानिक भाषा में ये 'असामान्य पुरुष' हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकांश मानसिक रोग का कारण विचार-यंत्र का गलत प्रयोग है। यंत्रों में जंक एवं मैल जम जाने से जिस तरह गतिरोध पैदा होता है उसी प्रकार विचार-यंत्र में असद्‌विचार रूपी मैल जम जाने से उसकी सक्रियता नष्ट हो जाती है। बुराइयों का चिन्तन मन को दूषित बनाता है। असद् विचार से मनुष्य के अन्तःकरण में अन्तर्द्वन्द्व मचा रहता है। अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसके स्नायु-तन्तुओं का तनाव बढ़ जाता है और शरीर के कोष तेजी से टूटने लगते हैं। वैसी स्थिति में अपचन, कैंसर, गठिया, हिस्टिरिया, क्षय आदि तक होने की संभावना रहती है। यही नहीं, धीरे धीरे यह शरीर को निर्बल बनाकर चिता तक पहुँचा देती है। धन्वन्तरि वैद्य और लुकमान हकीम भी नया जन्म लेकर उसे नहीं बचा सकते।

प्रश्न है, कैसे मानसिक तनाव से छुटकारा पाया जाय? मन को स्वच्छ, निर्मल, शुद्ध करने पर मन की गाँठ खुल जाती है और मानसिक तनाव से मुक्ति मिल जाती है। सत्य सोचने, कहने एवं करने का अभ्यास मन की शुद्धि में सहायक है। मानसिक स्वच्छता होनेपर अनिर्वचनीय सुख

का अनुभव होता है। जब भी सुविधा हो, एकान्त में बैठकर मद, मोह आदि विकार को दूर करें। एक एक दोष के नाश का उपाय सोचें। प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण, आत्मचिन्तन एवं आत्मविश्लेषण द्वारा अपने दोषों को मनन, विचार तथा प्रयत्न के द्वारा निर्बल कर दें। विकार मन तथा शरीर को शक्तिहीन बनाते हैं। इनसे मुक्त होनेपर शक्ति बढ़ जाती है। बहुत से व्यक्तियों में हीनता की भावना पायी जाती है। आत्मसुधार के मार्ग का यह विशाल रोड़ा है। ऐसे व्यक्ति अपनी तुलना दूसरे से करते हैं। ऐसी तुलना मन को और भी दूषित करती है। अमुक के पास आलीशान और भव्य भवन है, मेरे पास नहीं। अमुक के पास दो दो मोटर गाड़ियां हैं, मेरे पास नहीं। अन्य की तरह ये सारी वस्तुएँ मुझे भी प्राप्त होनी चाहियें। इस तरह के विकारों के रहने पर तो विश्व भर की सम्पदा, अतुल बल, महान् पद, असीम विद्या पाकर भी सुख नहीं हो सकता। अस्तु अपनी तुलना दूसरे व्यक्ति से न करके अपने विगत और वर्त्तमान की तुलना करें और नित्यप्रति पहले से अच्छा होने का प्रयत्न करें। मन को सुखी रखने के लिये सद्विचारों द्वारा पुराने विकारों का निराकरण, नये दोषों का प्रवेश मन में नहीं होने देना आवश्यक है। ऐसे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो अपने मस्तिष्क को सही दिशा में चलाकर जीवन को उत्तम भव्य विचारों एवं सत्प्रेरणाओं से भर लेते हैं। विचार-यंत्र को आन्तरिक संघर्षों के थपेड़ों से बचाने की अतीव आवश्यकता है।

विचार में शक्ति है। जैसा हम बनना चाहते हैं वैसा बन

सकते हैं। आवश्यकता है विचार-यंत्र को उस दिशा की ओर चलाने की। बाइबिल में लिखा भी है, "माँगो और तुम्हें मिलेगा। खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिये खुल जायेंगे। तलाश करो और तुम पा लोगे।" मनोविज्ञान का नियम है कि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही बन जाता है। 'महानिति भावयन् महान् भवति'—जो महान का चिंतन करता है वह महान बन जाता है। विचारों का प्रभाव आचरण पर ही नहीं, मनुष्य के बाह्य शरीर पर भी प्रगट होता है। जैसा विचार वैसी प्रतिक्रिया। इस संबंध में यहां एक छोटी सी कहानी याद आ जाती है। एक रानी थी। उसकी सुन्दरता पर एक अन्य शक्तिशाली राजा लट्टू हो गया। वह जबर्दस्ती उसे अपनी राजधानी में ले गया। अब बेबस रानी करती ही क्या! उसे अपना लाज बचानी थी, सतीत्व की रक्षा करनी थी। इस हेतु उसने एक उपाय ढूंढ़ा। राजा से उसने कहा कि वह छः मास एकान्त-वास करना चाहती है। तदनुसार राजाने सारी व्यवस्था कर दी। अब एकान्त-वास के समय रानी सदा यही विचार करने लगी—"मैं कुरूप हूँ। मेरे शरीर पर फोड़े और फुन्सियां निकल आये हैं। उनसे रक्त और पीब बह रहे हैं। उसपर मक्खियां भिनभिना रही हैं। उसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही है....आदि।" छः महीने पश्चात् विषयी राजा रानी से मिलने आया। रानी की दशा देख वह अवाक् रह गया। ठीक रानी की वही दशा हो गई जैसा कि वह एकान्त-वास के समय परिकल्पना किया करती थी। रानी की यह दशा देख तुरन्त ही विषयी राजाने उसे

अपने पति के पास भिजवा दिया। अपने पति के पास पहुँच कर रानीने यथावत् पूर्व घटना कह सुनायी। उसने अपने पति को आश्वासन दिया कि फिर छः महीने पश्चात् वह जैसी की तैसी बन जायगी। पुनः रानी ने छः महिने एकान्त-वास किया। इस बार उसने अपने विचारों को दूसरी तरफ मोड़ दिया। अब वह सतत् विचार करने लगीः—"मैं रूपवती हूँ। मेरे रोम-रोम से शक्ति और सौन्दर्य की आभा टपक रही है। मेरे अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट हैं। शरीर के फोड़े-फुन्सियां दूर हो गये हैं और शरीर से मीठी-मीठी सुगन्ध निकल रही है....।' छः महीने बीतते-बीतते रानी पुनः रूप-लावण्ययुक्त हो गयी और पति के साथ सानन्द से जीवन-यापन करने लगी।

हमारे विचार का प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है। कमजोर छात्रों को यह विश्वास दिलाकर कि "तुम पढ़ने लिखने में तेज हो" अध्ययनशील बनाया जा सकता है। बहुतों के मुख से यह बात सुनी जाती है कि सराहने से लड़का बिगड़ जाता है। पर यह उनकी भ्रान्ति है। सराहने से तो और उनमें काम करने का उत्साह होता है। कहावत है 'सराहे भीम दूना।' सराह करते ही भीम की शक्ति दूनी हो जाती थी। तात्पर्य यह है कि सराहना एक प्रेरक शक्ति का काम करती है। धार्मिक ग्रंथों में हमारे ऋषि-मुनियों के विचार संग्रहीत हैं। इनके श्रवण, मनन, चिन्तन एवं पठन से वैसा ही भाव मन में आने लगता है। रामायण, गीता आदि ग्रंथों

को पढ़कर आप इसकी परीक्षा कर सकते हैं कि किस प्रकार धार्मिक स्थलों पर हमारी आंखों से अश्रु की धारा प्रवाहित हो जाती है। विषयी से विषयी व्यक्ति भी साधुओं के समाज में जाकर भक्ति की ओर उन्मुख हुआ दिखाई पड़ता है, भले ही उसकी भक्ति-भावना क्षणिक हो। यह साधु एवं सज्जनों के सत्संग का फल है। संतजन अपने विचारों द्वारा कितनों को प्रभावित किये हैं। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी जैसे सन्तों ने किसे प्रभावित नहीं किया! हमारे पूर्वजों ने, ऋषियों ने, मुनियों ने, विद्वानोंने ऐसा कोई काम नहीं किया, जिसमें मानव-कल्याण का महान् उद्देश्य अन्तर्निहित न था। सारे भारतवर्ष में—देश की चारों दिशाओं में—देश के प्रत्येक अंचल में उन्होंने मन्दिरों, आश्रमों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रों की स्थापना की। इसमें उनका एक महान् उद्देश्य था—लोगों के संकुचित स्वार्थ को दूर करना तथा एक दूसरे के बीच मैत्रीसूत्र को दृढ़ करना। प्राचीन भारत में हमारे धर्म की उदात्त-भावना एवं हमारी सभ्यता की संपूर्ण भीत्ति इन मन्दिरों और आश्रमों में पूर्ण रूप से समन्वित थी। इन्हीं केन्द्रों में उपस्थित होकर मनुष्य अपने मलिन मन एवं कुविचारों की शुद्धि किया करते थे। उन्हें सदा भय रहता था कि यदि हम दूसरे का बुरा चाहेंगे तो स्वयंका बुरा होगा। 'बोए पेड़ बबुल का तो आम कहाँ से पाय" वाली कहावत चरितार्थ होने लगेगी। हमारे देवालयों से अहर्निश यह ध्वनि प्रतिध्वनित होती रहती थी कि—'सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामयाः।' आखिर इस सिद्धान्त के पीछे क्या रहस्य छिपा है? जाहिर है कि अगर व्यक्ति-व्यक्ति में आत्मशोध की अभिलाषा जागृत हो जाय तो वह अपने विवेक-बुद्धि से अपना तथा विश्व का कल्याण कर सकता है।

राबर्ट लुई स्टीवेन्सन का नाम आपने सुना होगा। किसी चिकित्सक ने उन्हें कहा कि 'तुम क्षयरोग से पीड़ित हो। बीमारी ने अपना फौलादी पंजा तुम पर जमा रखा है। तुम अब अधिक दिन नहीं जी सकोगे।' इसे सुन स्टीवेन्सन के मन में उथल-पुथल तो जरूर हुई परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने धैर्य के साथ अपने विचार-क्रम को ही बदल दिया। उन्होंने अपने मन में निम्न भावना को दृढ़ करना शुरु किया "मैं स्वस्थ हूँ। मेरी नस-नस में शक्ति का संचार हो रहा है। मैं विकाररहित हूँ। अति प्रसन्न हूँ। मेरा जीवन शुभसंकल्पमय है मैं जीऊँगा। संसार से प्रेम करूँगा और कर्म करूंगा। मैं अकाल मृत्यु नहीं मरूंगा।" ऐसी भावना को बार-बार दुहराने से उनका मन सदा यौवन, शक्ति, सौन्दर्य के सद्विचारों में ही रमण करने लगा। धीरे धीरे उक्त सभी गुण उनमें विकसित होने लगे। अंत में उन्होंने तपेदिक पर विजय पायी। पश्चात् उन्होंने देशाटन किया। पुस्तकें लिखीं। एक जगह अपना अनुभव उन्होंने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—"मेरा निर्माण जीवनभर संघर्ष करने के लिये हुआ है। पर ईश्वरने मुझे यह प्रेरणा दी है कि मेरी लड़ाई का मैदान एक मरीज का कमरा और दवा की शीशी

ही रहे। मैं बीमारी को मारकर भागता रहा। मृत्युको मैने अंत तक परास्त किया। मैं पूरे आत्मबल से कह सकता हूं कि मैं सफल रहा।"

सद्विचार ही सुख और सफलता की कुंजी है। इस अमूल्य रत्न को पाकर कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है। अज्ञान से उत्पन्न हुये अन्धकार को प्रकाशमय सद्विचार रूपी दीपक नष्ट करता है और अंधकार से प्रकाश, तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले जाता है।

व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हम "कुछ भी" करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ से परे किसी महान कार्य के लिए साधनों की परवाह न करते हुए भी, जो व्यक्ति दृढ़-संकल्प हो जाता है उसे लोग 'पागलपन' की संज्ञा ही देते हैं। यदि वास्तविक धरातल पर देखा जाय तो इन 'पागलपन' वालों ने ही विश्व के इतिहासों को समय समय पर एक नया मोड़ दिया है और दिया है एक नवीन

जीवन दर्शन। कॉयीरा को भी कुछ ऐसा ही पागलपन सवार हुआ। अन्धकार की गोद में विकसित होने वाले अफ्रीका देश को कॉयीरा एक नवीन जीवन देना चाहता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपनी असहाय माता को विपन्नावस्था में छोड़ा। अनेक असह्य कष्टों को सहते हुए २५०० मील की पैदल यात्रा करके अमेरिका पहुँचा। सिर्फ अपने देश को खुशहाल बनाने के लिए।

अफ्रीका के न्यासालैण्ड के म्पेल गाँव की एक टूटी-फूटी झोपड़ी में उसने जन्म लिया, पिता का साया पहले ही उठ चुका था। बूढ़ी माता ही उसका एक मात्र सहारा थी। कॉयीरा की माता मेहनत-मजदूरी करके भी मुश्किल से दो चून की रोटी कमा पाती थी। नव-जात दुध-मुहें शिशु का भूख से कुम्हलाया चेहरा उससे रोज रोज न देखा गया। आखिर माता यह जिन्दी मौत कब तक देख पाती। उसने हृदयको कठोर कर कॉयीरा को पास की नदी के सुपुर्द कर दिया। शायद इसलिए कि जल-देवता ही अब उसे अपनी गोद में ले लें। किन्तु विधाता को यह मंजूर न था। और कॉयीरा की जान मछुवाहों के हाथ बच गई।

गरीबी के प्रतीक कॉयीरा का बचपन बड़ी विपन्नावस्था में बीता। फिर भी यह घर से रोज १६ मील पैदल चलकर एक मिशनरी स्कूल में पढ़ने जाता। गरीबी का यह हाल था कि नग्नता के कारण एक दिन स्कूल से लौटाया भी

गया। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करके कॉयीरा उच्च शिक्षा के लिए लिविंगस्टोनिया मिशन स्कूल में गया। अध्ययनके साथ ही वह महान पुरुषों-अब्राहम लिंकन की जीवनी, बूकर टी. वासिंगटन की 'अप फ्राम स्लेवरी' आदि पुस्तकें पढ़ा करता। उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका जाने की उसकी बड़ी महत्वाकांक्षा थी। कॉयीरा की दृढ़ आस्था थी कि वहां की शिक्षा तथा नवीन-जीवन-दर्शन से वह अपने देश का जीवन-स्तर उन्नत कर सकने में समर्थ हो सकेगा।

अपने देश की दीन-हीन दशा से कॉयीरा बहुत क्षुब्ध था। नयी मानवता इस द्वीप से अभी कोसों दूर थी। सामाजिक विपन्नावस्था, राजनैतिक एवं आर्थिक दासता और मानसिक अज्ञान कायीरा से न देखा जा सका। इस दर्दनाक स्थिति ने उसके मानस को झकझोर दिया। वह ऐसी शिक्षा का सूत्रपात अपने देश में करना चाहता था जो उस देश के नागरिकों को अधिकार और कर्तव्य के प्रति जागरुक करती और विश्व के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ सकने में साथ देती। ३० लाख की आबादी के उस देश में कुल बाईस स्नातक थे। कॉयीरा की धारणा है कि अशिक्षित नागरिक देश पर भार बन जाते हैं। अशिक्षा उन्हें किसी योग्य तो बनाती नहीं उलटे वे डाकू, चोर और व्यभिचारी बनकर देश के लिए घातक ही सिद्ध होते हैं। इस क्षय रोग से अपने देश को मुक्त करने के लिए ही कॉयीरा अमेरिका जाना चाहता था।

स्नातक की पदवी लेने के बाद कॉयीरा ने अपनी माता के सामने अपनी इच्छा प्रकट की। गरीबी के कोल्हू में पिसने वाली नारी भला अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र के प्रगतिशील जीवन के बारे में क्या समझ सकती थी ? किन्तु उसने कायीरा को अपने जीवन की कुल अर्जित सम्पत्ति-चार-पांच दिन का भोजन कुछ आटा-सौंपकर अनुमति दे दी।

अक्तूबर १९५८, कॉयीरा के जीवन का एक महत्वम् दिन तो है ही विश्व के उन सभी अनाथ और गरीब युवकों के लिये भी प्रेरणास्पद दिन है, जो संघर्षों से जूझते हुए किसी महान् स्वप्न को साकार करने के लिये सिर पर कफन बांध कर चल पड़ते हैं। एक कमीज, हाफ-पैण्ट और चार-पांच दिन के लिये खानेका आटा यही सब कुछ उसके साधन थे, अमेरिका पहुंचने के लिये।

अक्तूबर १९५८ से जनवरी १९६० के बीच कायीरा अनेक कष्टों का सामना करते हुये १००० मील की दूरी तय कर कम्पाला उगण्डा पहुंचा। अनेक बार इसके प्राणों पर बन आयी फिर भी इसने हिम्मत न हारी। कार्य-सिद्धि के लिये यह मेहनत मजदूरी करने से भी न झिझका। भयानक हिंसक जंगली जानवर और बीहड़ मार्ग इस युवक के निश्चय को न डिगा सके। उगण्डा में पत्थर आदि ढोकर कॉयीरा दो चून की रोटी प्राप्त करता।

उगण्डा में एक युवक कॉयीरा को एक अमेरिकन पुस्त-

कालय में ले गया, तब से वह रोज पुस्तकालय में जाने लगा। वहां उसे अब्राहम लिंकन पर एक नवीन पुस्तक मिली। कॉयीरा बहुत प्रसन्न हुआ। किन्तु उस पुस्तक में उसे एक कठिन शब्द मिला। उसका अर्थ जानने के लिये उसे शब्द-कोष ढूंढ़ते २ अमेरिकन कालेज और विश्वविद्यालय से सम्बन्धित एक डायरेक्टरी मिली। कॉयीरा को जैसे अभीष्ट फल मिल गया हो। कायीरा ने अपनी एकमात्र संपत्ति से प्रवेश के लिये आवेदन पत्र वाशिंगटन कालेज के डीन जार्ज हडसन के नाम भेज दिया। सन्तोषप्रद उत्तर के लिये उसे पूर्ण आशा थी।

वाशिंगटन कालेज के डीन ने कायीरा को प्रवेश की अनुमति ही न दी बल्कि छात्र-वृत्ति के लिये आवेदन करने को आग्रह भी किया। और वहां पहुंचने पर योग्य काम दिलवाने का आश्वासन भी दिया। किन्तु अब १,००० मील की दूरी धन एवं पासपोर्ट के अभाव में कैसे पार की जाय यह विकट समस्या कायीरा के सामने उपस्थित हो गई।

अपने पहिले विद्यालय की सहायता से कायीरा ने किसी प्रकार पास-पोर्ट प्राप्त कर लिया। और १ सितम्बर १९६० से उसने यात्रा पुनः प्रारंभ कर दी। धन का अभाव होने पर भी दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्पके बल पर वह केला आदि बेचकर आगे बढ़ता ही रहा। २०-३० मील प्रतिदिन चलकर वह किसी प्रकार नील नदी तक पहुंचा।

२६ सितम्बर १९६० को कायीरा खारतूम स्थित अमेरिकन राजदूतावास पहुंचा। यद्यपि आने-जाने के लिये पास-पोर्ट तथा धन के अभाव में उसे अमेरिका जानेकी अनुमति न मिल सकी। किन्तु दूतावास ने इस समाचार को स्कैगिट वेली कॉलेज के डीन तक पहुंचा दिया। डीन बड़ा दयालु एवं सज्जन व्यक्ति था। उसने मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा तथा अन्य साधनों द्वारा १७०० डालर कायीरा की सहायता के लिये एकत्रित किये। कायीरा ने इस अवधि में अमेरिकन दूतावास में अमेरिका तथा अन्य उन्नतिशील देशों के विषय में काफी अध्ययन कर डाला। १६ दिसम्बर १९६० को कायीरा खारतूम से अमेरिका के लिये चल पड़ा। उस दिन कायीरा का दिल खुशी से कितना कहकहा उठा होगा इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है ?

अमेरिकन विश्वविद्यालय में कुछ दिन तक तो कायीरा काफी उपहास का पात्र बना रहा किन्तु धीरे-धीरे वह वहां के जीवन से अभ्यस्त हो गया। अनेक अमेरिकन आज उसके अन्तरंग मित्र हैं जिनके जीवन से वह अच्छी तरह घुल-मिल गया है।

अमेरिका के संभ्रान्त एवं व्यस्त जीवन में भी कायीरा का अधिकांश समय अध्ययन में जाता है। वह बहुत परिश्रमी एवं अध्ययनशील युवक है। विज्ञान, राजनीति, इतिहास अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विभिन्न विषयों के प्रति उसका

भारी लगाव है। कायीरा अपने जीवन को किसी महान् कार्य के लिये ढालने में तत्पर है। और वह कार्य है अपने देश को दासता की बेड़ियों से मुक्तकर वहां के नागरिकों को मानवीय अधिकार दिलाना। आधी आधी रात तक कायीरा अपने देश के युवक, विद्यार्थी और उत्साही लोगों को विभिन्न प्रकार के पत्र लिखा करता है जिनका एक ही मूल स्वर होता है— दासता की बेड़ियों को काटकर स्वतंत्रता प्राप्त करो।

कायीरा को पूर्ण विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है जब वह अपने देश का राष्ट्रपति प्रधान मंत्री अथवा कोई महान् कर्णधार बनेगा, और उसकी मातृ-भूमि उसकी बहुमुखी प्रतिभा से लाभान्वित होकर गद्गद् हो उठेगी। उपने देश को वह किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं देखना चाहता है।

गोल चेहरा, आंखों में एक आश्चर्य-जनक आशामयी चमक की भूरी आंखें जिनमें नीग्रोपन छलछलाता है—मिल-जुलकर कुछ ऐसा ही रेखा चित्र है इस २२-२३ वर्षीय ज्ञान-जिज्ञासु नीग्रो युवक—कायीरा का।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में दर्शाया गया है कि सृष्टि के आदि में इन्सान और गाय दोनों आए, दोनों चुप थे। पहले गाय मुंह खोल कर बोली। उसी के सहारे इन्सान ने मुंह खोला। अतः गाय से इन्सान को बोली मिली। इसी से मिलता-जुलता एक उदाहरण आदम और हौवा के जीवन के संबंध में है। दोनों स्वर्ग लोक से निकाल दिये गए। भगवान् उन्हें एक मुट्ठी अन्न और एक जोड़ी बैल दिए।

गो की उत्पति के सम्बन्ध में तीन तरह के प्रसंग आते हैं। ब्रह्मदेव एक मुंह से अमृत पान कर रहे थे और दूसरे से फेन निकला, जिससे सुरभि की उत्पत्ति हुई। एक दूसरे स्थान पर कहा गया है कि हम लोगों के आदि पिता दक्ष प्रजापति हैं। उनकी साठ बेटियां थीं, जिनमें सबसे प्यारी सुरभि थी। आगे चलकर बतलाया गया है कि विश्व के कल्याणार्थ देव दनुज दोनों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया। जिससे चौदह रत्न निकले जिनमें से एक सुरभि है। सुरभि से सोने के रंग की कपिला पैदा हुई। उसके थन के दूध से क्षीर-सागर बना। कपिला के बच्चे कैलाश पर चरते तथा धूम मचाते। नीचे शंकर जी ध्यानमग्न थे। उन बच्चों के मुंह के फेन लगने से शंकर जी का ध्यान भंग हुआ, और उन्होंने तीसरे नेत्र से उनको देखा। उसी समय से गाय का सोने का रंग कितने ही रंगों में परिणत हो गया।

हिन्दुओं का विश्वास है कि गाय के शरीर में सभी देवता निवास करते हैं। इस प्रसंग में एक कथा है कि पृथ्वी पर सबसे पीछे लक्ष्मी जी आयीं। गाय ने उन्हें अपने गोबर और मूत्र में सर्वप्रथम स्थान दिया। कहा जाता है कि जब पृथ्वी पर घोर अत्याचार होता है, तो वह गो-रूप में भगवान् के पास जाती हैं और उसका दुख दूर होता है। इसीसे मिलता जुलता एक प्रकरण पारसियों के इतिहास में भी है। गाय की महिमा इसीसे समझी जा सकती है कि पहले गंगा पृथ्वी पर आने के लिये तैयार न थीं, क्योंकि इनमें पापी लोग

स्नान करेंगे और वे अपवित्र हो जायंगी। पर गाय के खुर के स्पर्श से अपने को पवित्र होने की बात सुन कर वे यहां आईं। गाय से ही गोत्र शब्द की उत्पत्ति हुई है। बाद में हिन्दुओं ने विभिन्न वंशों के परिचय के लिये इसका व्यवहार होने लगा। ऋषिगण गौओं के झुण्ड रखते थे, उसीसे यह गोत्र शब्द बना है। उस समय लड़कियों का मुख्य कार्य गो-सेवा था, इसीलिये वे दुहिता कहलाती थीं। पश्चिमी देशों में आज भी गौओं की परिचर्या विशेषतः औरतों के हाथ में सुपूर्द है।

कथा है कि एक दिन महादेवजी ब्रह्मदेव के घर गये। पितामह ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें बहुत सी गाएं दीं। उन्हें पाकर महादेव जी बड़े खुश हुए और तभी से उनका नाम पशुपतिनाथ पड़ा। पशुपतिनाथ आज भी नेपाल के प्रथम आराध्यदेव हैं। महादेवजी ने अन्य शीघ्रगामी सवारी को त्याग कर अपनी सवारी के लिये नन्दी नामक बैल को चुना। नेपाल के राजा बाणासुर शंकर जी के बड़े भक्त थे। एक बार महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हें अच्छी एक दर्जन गाएं दीं। उन गायों को पाकर बाणासुर अत्यन्त प्रतापी और शक्तिशाली हुये। बाणासुर की लावण्यवती पुत्री से भगवान् कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का गुप्त प्रेम हो गया। इस भेद के खुलने पर बाणासुर ने अनिरुद्ध को कैद कर लिया। यह संवाद पाकर भगवान् कृष्ण अपनी विशाल सेना के साथ नेपाल पर चढ़ आये। यह खबर पाकर बाणासुर ने

अपने मंत्रियों को एकत्रित करके मंत्रणा की, राज भले जाने को वे सहन कर सकते थे, परन्तु उन गायों का चला जाना उनको सहन न था। सब की राय से गाएं कुबेर के यहां थाती के रूप में इस शर्त पर रख दीं कि वे बाणासुर के सिवा किसी को गाएं नहीं दे सकते। बाणासुर लड़ाई हार गए। संधि हुई। दान आदि लेकर कृष्ण द्वारका को चलने को हुये कि किसी ने कान में चुगली खाई—'भगवान्, आप को असल चीज हाथ नहीं लगी। संसार की संपदा को लजाने वाली बारह गायें कुबेर के पास छिपा दी गई हैं।' फिर तो कुबेर को गायें वापस करने के लिये कहलाया गया। परन्तु उन्होंने देने से इन्कार कर दिया। इस पर फिर लड़ाई के बाजे बज उठे। देवता डर गये। शांति-दूत दौड़ पड़े और बड़ी मुश्किल से वे कृष्ण को समझा-बुझा कर घर लौटा लाये।

एक बार अपनी विशाल सेना के साथ किरातार्जुन तपोवन में जमदग्निऋषि के अतिथि बने। ऋषि ने काम धेनु के दूध से सेना-सहित राजा की अच्छी मेहमानदारी की। राजा गाय पर मुग्ध हो गया। ऋषिसे गाय माँगी, पर उन्होंने देने से इन्कार किया। राजा ने अपने आदमियों से बलपूर्वक गाय ले चलने को कहा। वे ले चले, ऋषि ने रोका। राजाज्ञा से ऋषि का सिर काट दिया गया। ऋषिपत्नी रेणुका रो-रो कर चीत्कार करने लगी। जमदग्नि के पुत्र परशुराम पास के पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। उनका आसन डोला। वे शीघ्र

घर लौटे और सारा दृश्य देख कर अत्यन्त कुपित हुये। उन्होंने क्षत्रियों के साथ भयंकर लड़ाई लड़ी।

भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध में भी विचित्र कहानियां कही जाती हैं। छुटपन में गाय चराना, गाय पर आघात करने वाले को मार डालना, इन्द्रदेव के मान को मर्दन करना, गोवर्द्धन धारण कर गो-रक्षा करना, रासलीला के समय श्रांत होने पर अपने वाम अंग से गाय को उत्पन्न करना, जिससे दुग्धकुंड की तैयारी हुई और गोप-गोपिकाओं ने उस दूध को पीकर अपनी क्लान्ति दूर की आदि कथाएं विस्तृत रूप में वर्णित हैं। श्रीकृष्ण का सारा ज्ञान गोचारण में ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने गीता में कहा है—'पशुओं में मैं कामधेनु हूं।'

गुरुनानक बचपन में गाय चराया करते थे। एक दिन ग्रीष्म की दुपहरी में गौओं को सहेज कर वे एक घने वृक्ष के नीचे सो गये। उधर से निकलने वाले कुछ राहगिरों ने देखा कि एक काला-सर्प फन काढ़े नानक के सिर के पास खड़ा है। उन लोगों ने पत्थर मार कर नानक को जगाया। उनके उठते ही सर्प जंगल की तरफ चल दिया। कहते हैं कि उसी वक्त से नानक ध्यानमग्न रहने लगे और आगे चल कर सिक्ख संप्रदाय के संस्थापक हुये। इस तरह महात्मा ईसा भी गाय चराया करते थे, जबकि उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ था।

महात्मा बुद्ध के जीवन में भी एक ऐसी ही घटना घटी

थी। उन्होंने ४९ दिन तक उपवास किया। फिर भी उन्हें ज्ञान व मुक्ति नहीं मिली। गया के पास बोधि वृक्ष के नीचे वे उदास बैठे थे। उसी इलाके के उरूवेला नामक स्थान के सरदार की बेटी सुजाता ने वटवृक्ष की मिन्नत मानी थी कि यदि उसकी मनोकामना पूर्ण हो जायगी तो वह १६ सौ गायों के दूध की खीर वटवृक्ष पर चढ़ायेगी। उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई। उसने १६ सौ गायों को दुह कर दूध ८०० गायों को पिलाया, फिर उनको दुहकर चार सौ को पिलाया। इसी क्रिया से अन्त में १६ गायों को दुहा और उनका दूध आठ गायों को पिलाया। फिर आठ गायों का दूध लेकर उसने खीर तैयार करके उसे सोने के थाल में परोस कर वटवृक्ष के सामने उपस्थित हुई। यह देख कर कि वटवृक्ष देव मनुष्य रूप धारण कर उसका उपहार ग्रहण करने के लिए पहले से बैठे हैं, सुजाता आनन्द के मारे विभोर हो उठी। बुद्ध ने खीर खाई और उनको ज्ञान तथा मुक्ति का पता लग गया।

चवन ऋषि के विषय में बड़ी ही रोचक कथा सुनने को मिलती है। वे गंगा के गर्भ में बैठे एक बार तपस्या कर रहे थे। इसी बीच कुछ मछुए मछली मारने आए। उन्होंने गंगा में जाल डाला और मछली के बदले उसमें मुनि आ फंसे। मछुए उन्हें नहुष के दरबार में बेचने के लिए ले गए। नहुष ने मुनि के बदले एक थैला सोना दिया। इस पर मुनि बोले कि इतना कम मेरा दाम नहीं होगा। इस पर राजा ने अपना सारा राज्य मुनि के मूल्य में देना चाहा पर इतने पर भी

मुनि संतुष्ट नहीं हुए। अन्त में राजा ने विनय पूर्वक पूछा कि महाराज आप ही बतलाए आपका मूल्य क्या होगा? मुनि ने कहा कि मेरा मूल्य एक गाय है। आप एक गाय दीजिए। राजा ने एक गाय दे दी। इससे पता चलता है कि प्राचीन काल में एक गाय का मूल्य समूचे राज्य से ज्यादा था।

जब भरत जी भगवान् राम से मिलने गए तो उन्होंने भरत से पूछा कि भाई तुम पर गोपगण का प्रेम है न और गो-रक्षा होती है या नहीं? गायों की रक्षा के लिये प्राचीन काल के राजे-महाराजे तक गोचिकित्सक होते थे—जैसे महाराज नल, ऋतुपर्ण, सहदेव, नकुल आदि प्रसिद्ध गो-चिकित्सक थे। तपोवन के ऋषि के शिष्य उपमन्यु आक का पत्ता खाकर अन्धा हो गया। गुरु की कृपा से गाय चराते-चराते उसको दृष्टि लाभ हुआ। प्राचीन काल में ब्रह्मचारियों को गो-पालन की शिक्षा दी जाती थी। उस समय गायों का बड़ा मान था। जैसे हम लोग पूजा करते हैं उसी तरह पारसी सांडों की पूजा किया करते थे। मिश्र में सुनहले बछड़ों की पूजा हुआ करती थी। वहां के पुराने सिक्कों पर बैलों की मूर्ति अंकित रहती थी। ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व बने पिरामिडों पर बैलों की मूर्तियां अंकित हैं। आज भी केल्टिक जाति के लोग गो पूजक हैं। उस वक्त सम्पूर्ण मुसलमानी राष्ट्रों में गायों की पूजा होती थी और उनका मारना दण्डनीय था। इस तरह हम देखते हैं कि मानव जीवन में गायों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

उत्तम और अनुकूल भोजन स्वास्थ्य प्राप्ति की कुन्जी है। हम प्रतिदिन तरकारी और फल खाते हैं। किन्तु हम में से कितने लोग उन सुन्दर वस्तुओं का मूल्य और वास्तविक प्रयोग समझते हैं—जिन्हें धरती माता उत्पन्न करती है। यदि हम उनके गुणों को समझ जायें तो हम अपने दैनिक आहार में उनको सेवन करने से न चूकेंगे।

हरीपत्तियां जीवन मूल हैं। हरी सब्जियों में प्रकृति ने अनुपम विटामिनों का सम्मिश्रण किया है। प्रायः यह धारणा सब लोगों की है कि दूध में सबसे अधिक विटामिन पाया जाता है, किन्तु यदि यथार्थ रूप से देखा जाय तो यह भी परोक्ष में हरी सब्जियां तथा पत्तियों का ही निचोड़ है।

हमारे देश में हरी पत्तियों के सागों में सबसे अधिक उपयोगी और गुण कारी पालक का साग माना गया है। पालक के साग में शरीर निर्माण के लिये जो उपयोगी पदार्थ और बिटामिन पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं:— बिटामिन 'ए' 'बी' 'सी' 'ई' प्रोटिनसोडियम, चूना, फासफोरस, क्लोरिन तथा लोहा आदि। यह रक्तके रक्ताणुओं में रंजक कार्य करते हैं। अधिक तर इनमें प्रोटीन उत्पादक एमनो एसिड पाया जाता है। यदि आपको बुद्धि विकास के रहस्य मय कारण जानने हैं, तो हरी पत्तियों की परीक्षा अवश्य कीजिये। इनमें एक ऐसा तत्व निहित है जो प्राणी मात्र में विकास और बुद्धि की शक्ति प्रदान करता है। पालग के साग में ९२ प्रतिशत जल होता है। पालक वात कारक, ठण्डा, कफ कारक, दस्तावर, विष्टम्भजनक, भेदक, भारी होता है। श्वास पित्त, खून की उलटी तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह पित्त नाशक भी है। ज्वर में पथ्य के रूप में भी इसे दिया जाता है। पालक में बिटामिन 'ए' 'बी' 'सी' अधिक मात्रा में और डी तथा ई थोड़ी मात्रा में होते हैं। ये पकाने पर कुछ कम हो जाते हैं। परन्तु पूरी तरह नष्ट नहीं होते। बिटामिन की दृष्टि से पालक का साग बहुत ही उत्तम होता है।

पालक में जो खनिज पदार्थ पाये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं:—१०० भाग में ६.४ लौह, ७७.८२ सोडियम २२.७३ केलसियम और पोटेशियम २१.९१। इससे प्रकट होता है कि सारे पत्र-शाकों की अपेक्षा पालक में खनिज पदार्थ सबसे

अधिक होते हैं। एक छटांक की खुराक में पालक ५ भाग प्रोटीन, २ भाग बसा, ७ भाग कार्बोहाईड्रेट, ८२ भाग चूना और ०३१९ भाग लौह होता है। इससे स्पष्ट है कि पालक लवणों और खाद्योजों का भण्डार है। दूध का अभाव और महंगा पन केवल एक ही वस्तुद्वारा पूरा किया जा सकता है और वह है पालक। सुनने में तो यह बड़े आश्चर्य की बात है किन्तु यह बिलकुल सत्य है कि दूध के पोषक तत्वों को पालक जैसी हरी सब्जियां सुगमता से पूरा कर देती हैं। दूध विटामिन, 'ए' का भण्डार है और सब्जियां उसका प्राकृतिक मूल तत्व है।

हरी सब्जियों में लवण खनिज बहुतायत से पाये जाते हैं जो कि अन्य दूसरी वस्तुओं में इतनी प्रचुर मात्रा में नहीं पाये जाते हैं। पालक में ये खनिज लवण अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इन लवणों के प्रयोग से शरीर में संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से संघर्ष करने की क्षमता बढ़जाती है। हम अपने प्रतिदिन के आहार में भिन्न-भिन्न दालों का प्रयोग करते हैं। दालों से हमें प्रोटीन प्राप्त होता है, किन्तु दालों में सबसे बड़ी कमी यह है कि इनमें लगभग २५ एमिनोएसिड अपूर्ण मिलते हैं जिनकी आवश्यकता मांस तन्तुओं के निर्माण में सहायक होती है। यह कमी पालक जैसी हरी पत्तियों के सागों से पूर्ण हो जाती है। कब्ज की शिकायत वाले व्यक्तियों को पालक का सेवन अपने दैनिक आहार में में अवश्य करना चाहिये। भोजन के पचाने में और आहार

पथ्य को क्रियाशील करने में पालक के समान दूसरा कोई साग नहीं है। कोष्ठ बद्धता की अवस्था में पालक अपने नित्य के भोजन के साथ नियमित रूप से सेवन करने से निश्चित लाभ होता है। इसके अतिरिक्त मधुमेह रोग में भी यह बहुत गुण कारी है। ब्लड प्रेसर की शिकायत वाले व्यक्तियों को भी पालक का सेवन करने से लाभ होता है।

पालक के खाने तथा पकाने की सरल विधि यह है कि इस शाक को पकाने के लिये कम से कम जल का प्रयोग करना चाहिए क्यों कि इसमें जल पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि कुछ गृहणियां पालक के शाक उबलने पर बनने से पहले ही उपयोगी जलीय भाग को व्यर्थ समझ कर फेंक देती हैं और फिर मसाले तथा ऊपर से जल डालकर पतला शाक बनाती हैं। यह पौष्टिक तथा पोषक तत्वों से रहित केवल एक घोल मात्र रह जाता है, क्यों कि इसका असली तत्व तो जल के साथ निकल जाता है। इस-लिये शाक से निकले हुये पानी को पुनः शाक में डालकर पकालेना चाहिये जिससे शाक के मूल तत्वों से हम वंचित न रह सकें।

बथुवा और मेथी

बथुआ और मेथी भी पालक की जात बिरादरी से मिलती जुलती एक बनस्पति है। भारत में अधिकांश लोग अपने दैनिक आहार में इनको प्रमुख स्थान देते हैं। बथुआ पाक में चरपरा, अग्नि को तेज करने वाला, पाचक, पित्त, बवासीर, पेट के कीड़ों और त्रिदोष को नष्ट करता है। नेत्र रोग में

भी यह लाभदायक होता है। कफ की शिकायत रहने वाले व्यक्तियों को तो इसका उपयोग नियमित रूप से प्रतिदिन करना चाहिये। लाल बथुआ अपेक्षाकृत अधिक गुणकारी होता है। इसमें एक प्रकार का क्षार और विटामिन 'ए' की प्रबलता रहती है। चेचक में वमन कराने के लिये बथुआ के रस में शहद मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। वात ज्वर में बथुआ को उबाल कर उसका पानी पीना चाहिये एवं अग्नि से जल जाने पर बथुआ का रस लगाने से जले हुये स्थान को ठण्डक मिलती है।

इसी प्रकार मेथी का साग भी अत्यन्त गुण कारी है। मेथी के शाक में भी विटामिन 'ए' की बाहुल्यता रहती है। मेथी का शाक कुछ कड़वा, वात कफ नाशक, रुचिकर, दीपन या अग्नि बढ़ाने वाला और कुछ गर्म होता है। यह किंचित् पित्तकारक भी है। हरे शाक का पौष्टिक एवं आरोग्य वर्धक, गुण इसके पत्तों में सार्थक रूप से विद्यमान है। मेथी के गुणों से भी बहुधा कम लोग परिचित होंगे। कोष्ठबद्धता की शिकायत को भी यह किन्हीं अंशों तक दूर करती है। वात जन्य पीड़ा पर मेथी के पत्तों के एक छटांक रस में छः माशे शक्कर मिलाकर पीना चाहिये एवं बहुमूत्र की शिकायत होने पर मेथी के पत्तों का रस एक पाव तक पीने से यह शिकायत दूर हो जाती है। रक्तातिसार में मेथी के रस में मुनक्का पीस कर पीने से बड़ा लाभ होता है। लू लगजाने पर मेथी का सूखाशाक ठण्डे पानी में थोड़ी देर भिगोने के बाद अच्छी तरह पकाकर तथा छान कर और उस पानी में थोड़ी शहद मिलाकर पीने से शीघ्र लाभ होता है।

मूली के पत्ते

बथुआ और मेथी के अतिरिक्त मूली के पत्तों का शाक भी बड़ा उपयोगी होता है। बहुत से लोग मूली खरीदते समय मूली तो ले जाते हैं परन्तु उसके पत्ते वहीं तोड़ कर फेंक देते हैं क्योंकि उन्हें मूली के पत्तों के गुणों के विषय में जानकारी नहीं होती है। मूली के पत्तों का शाक पाचक, हल्का, रुचि कर और स्वादिष्ट होता है। यह त्रिदोष नाशक है। मूली के पत्तों को उबालकर तथा छौंक कर खाना चाहिये। बिना भुना हुआ शाक कफ और पित्त उत्पन्न करने वा ा होता है, इसलिये उबाल कर ही इस शाक को उपयोग में लेना चाहिये। इसमें विटामिन 'सी' तथा 'ई' पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहते हैं। मेरी तो यह धारणा है कि मूली के पत्ते मूली से कहीं अधिक गुण कारी होते हैं। इसके नियमित उपयोग से कब्ज की शिकायत कम हो जाती है तथा रक्त की वृद्धि होती है इसलिये मध्यम वर्ग के लोगों तथा निर्धन लोगों के अतिरिक्त धनिकों को भी मूली के पत्तों का शाक अवश्य उपयोग में लाना चाहिये।

हमारे देश में वर्तमान समय में अत्यन्त महंगाई के कारण गरीब लोग फलों और महंगे शाकों का उपयोग नहीं कर पाते परन्तु पालक, मेथी, बथुआ, मूली के पत्ते आदि ऐसे सस्ते और सर्व सुलभ शाक हैं जिनका उपयोग निर्धन लोग भी आसानी से कर सकते हैं और इनके द्वारा अपने स्वास्थ्य को बनाये रख सकते हैं। इनके सेवन करने से हम अनेक रोगों से बचे रहेंगे और दीर्घ काल तक-जीवित रह कर देश और समाज की सेवा भली प्रकार से कर सकेंगे।

इस अणुबम के युग में जब मनुष्य स्वयं अपनी शक्ति के आगे ईश्वर को भी तुच्छ समझने लगा है, शान्ति का पवित्र महामंत्र गूँजने के बजाय अशान्ति का शंखनाद हो रहा है, अमरिका जैसे आधुनिक युग में सभ्यता के ऊँचे शिखर पर माने जाने वाले देश में जॉन केनेडी जैसे शान्तिदूत की निर्मम हत्या जैसे काण्ड हो रहे हैं, चीन में मानवता सिसक रही है, लद्दाख विस्फोटक खामोशियों में जी रहा है, स्वार्थ,

लोभ और मद में चूर हो भाई का गला भाई काट रहा है, मानवता पशुता के पैरोंतले रौंदी जा रही है, ऐसे विषम युग में यह परमावश्यक हो गया है कि मानवता के सही अर्थ को समझा जाय और उसे अमल में लाया जाय।

मानवता के सही अर्थ को समझने के लिये सबसे पहले इस शब्द की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात करना आवश्यक है। मानव शब्द में ता प्रत्यय जोड़ने से यह शब्द भाववाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके पर्यायवाची शब्द हैं–जन, लोक, मनुष्य, नर, पुरुष, आदमी आदि। जन अर्थात् प्रजनन करनेवाला, लोक अर्थात् लोकदर्शने वा देखनेवाला, मनुष्य अर्थात् मननान्मनुष्य-मननशील, नर अर्थात् नरमते, नरत्ति इति नरः जो भोग में रमता नहीं, पुरुष अर्थात् पौरुष-पुरुषार्थी। मानव और आदिमी वा आदमी शब्द तो मन और आदम के वंशज के द्योतक हैं। वैसे मानव शब्द को मन से उपजा हुआ भी माना जाता है। इस शब्द को मा + नव अर्थात् मां का नया रूप भी मान लेने से इस शब्द की सार्थकता में बहुत बड़ी सहायता एवम् प्रेरणा मिल सकती है।

इस तरह ऊपर कथित शब्द एक प्रकार से मानव के विभिन्न गुण–दशा दर्शाते हैं। कुछ न कुछ ये गुण प्रत्येक मानव में निहित होते हैं। इन गुणों को बुद्धि–विवेक से विकसित और उनमें सामंजस्य स्थापित करना मानव का परम कर्तव्य है।

विभिन्नता तो प्रकृति का शाश्वत नियम है। पाँचों

ऊँगुलियां तो बराबर हो नहीं सकती। लेकिन मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना से खिन्न हो मानव और उसका अस्तित्व छिन्न भिन्न न हो जाय इसलिये ही कुटुम्ब, समाज, राज्य, राष्ट्र का विधान है जिसके कर्तव्य हैं मानव की, मानवता की रक्षा करना। लेकिन इस विभिन्नता के मूल में अकाट्य एकता मौजूद है। काले, गोरे, लंगड़े, लूले सभी मांस के लोथड़ों में एक ही धड़कनेवाला दिल है और सोचनेवाली बुद्धि तथा भले-बुरे का विचार करनेवाली आत्मा।

भारतीय संस्कृति के अनुसार यह मान्यता है कि मानव के आदि पुरुष विवस्वान भगवान के पुत्र मनु हैं और उन्हीं से मानव का विकास हुआ लेकिन इस संबंध में एक और धर्म कथा प्रचलित है। जिसके अनुसार पुरुष मनु को मानव का जनक न मानकर मनु नामक स्त्री इसकी जननी मानी गई है।

यह मनु दक्ष की ६० कन्याओं में से एक थी। इसका और इसकी अन्य सात बहनों-दिती, अदिती, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा और अनला का विवाह कश्यप ऋषि के साथ हुआ था। इसी मनु से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुये। दिती से दैत्य, अदिति से आदित्य, वसु, रुद्र और अश्विनीकुमार हुये। दनु से दानव, हयग्रीव, कालका से कालक और नरक, ताम्रा से क्रौंची, भासी (गिद्धि), श्वेनी, धृतराष्ट्री और शुकी पांच कन्यायें हुई। क्रोधवशा से मृगी, मृगमन्दा, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि, सुरसा और कद्रू का जन्म हुआ। अनला ने फलयुक्त वृक्षों को जन्म दिया।

ताम्रा के गर्भ से मादा पक्षियों और क्रोधवशा के गर्भ से मादा जानवरों तथा सापों की मां सुरसा और गरुड़ की मां विनता का आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार इन सबकी पैदायिश इन आठों बहनों से मानी जाती है। अतः ये सब आपस में मौसेरे भाई हुये। इस कथा को सत्य मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये क्योंकि आज भी हम आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं फलां औरत को कुतिया हुई और फलां के गर्भ से आधा धड़ मानव का और आधा धड़ पशु का धारण किये विचित्र मानव का जन्म हुआ।

इस कथा के अधार पर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मानव तो मानव पशुपक्षियों का भी हमारा कितना निकट का संबंध है इसलिये तो कहा जाता है "वसुधैव कुटुम्बकम्" विश्व के तिनके तिनके से मानव का बड़ा ही घनिष्ठ नाता है।

दानव और मानव में विभेद तो कर्म के कारण होता है। किसी ऊँचे कुल में पैदा होने मात्र से ही हम ऊँचे कहलाने के अधिकारी नहीं। ऊँच-नीच का भेद तो हमारे कर्म से संबंध रखता है। कहां "उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती" रावण और कहां रघुवंश कुल में जन्म लेनेवाले राम। वास्तव में इन दोनों महापुरुषों को राक्षसत्व और देवत्व की पदवी तो उनके कर्मों के फलानुरूप ही मिली। ठीक ही तो है "कर्म प्रधान विश्व करि राखा।"

सदाचार, परोपकार, दया, अहिंसा, सेवा, त्याग और भक्ति आदि वृत्तियां मानव को सच्चा मानव बनाती हैं। इन्हें त्याज्य करनेवाला दानव कहलाता है।

"क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा पंच रचित यह अधम शरीरा" यहां अधम् शब्द का अर्थ पापी वा नीच नहीं अपितु अ + धम् अर्थात् धर्म से रहित क्योंकि धर्म धारण किया जाता है, बिना इसके धारण किये पंचतत्वों से निर्मित इस जड़ शरीर की गति नहीं है इसीलिये तो कहते हैं— "धर्म मम् शरणम् गच्छामि।"

इन्द्रियों से अलग मन है और मन से अलग बुद्धि तथा बुद्धि से अलग आत्मा है। बुद्धि और आत्मा के अनुशासन में अपने मन और इन्द्रियों को जो चलाता है और काम, क्रोध, मद, लोभ और माया से रहित रहकर सबके कल्याण में ही अपना भी कल्याण मानता है सही अर्थों में वही मानव है। वास्तव में यही उसका सबसे उत्तम धर्म भी है न कि वह धर्म जिसके नाम पर खून की नदियां बहती हैं और मां, बहनों बहू, बेटियों की इज्जत लूटी जाती है तथा महत्वाकांक्षियों का राज्य, वैभव के महल बकरे की तरह हलाल होने वाले मानव की अर्थियों से निर्मित होते हैं।

काम, क्रोध, मद, लोभ, माया वास्तव में ऐसे चोर हैं जो मानव की आत्मा और बुद्धि को दिन रात मूसते (चोरी) करते हैं। अगर इन पर नियंत्रण किया जा सके

तो एक प्रकार से दुराचार-वृत्ति जो मानवता का प्रतिघातक है का खात्मा ही हो जाय।

नियंत्रण से नियमितता आती है और नियमितता से मानवता बहुत हद तक कायम रह सकती है अतः यह आवश्यक है कि मानव नियंत्रण में भी रहना सीखे। नियमित का नियंत्रण तो मानव को मानवता के ऊंचे शिखर पर पहुंचा सकता है। सृष्टि के रचियिता परमपिता परमेश्वर में श्रद्धा-भक्ति रहने से इसकी रक्षा में अवश्य ही एक बड़ा बल मिलता है। लेकिन इसकी सत्ता भी मानता कौन है? वास्तव में इस विषय में तीन वृत्ति के लोग हैं। एक तो वे लोग जो ईश्वर को मानते ही नहीं, दूसरे वे लोग जो यह तो मानते हैं कि ईश्वर है जरूर परन्तु स्वर्ग में निवास करता है, तीसरे वे लोग हैं जो जगत् के चराचर सब में ईश्वर को व्याप्त मानते हैं।

प्रथम कोटि के लोगों की तो बात ही जुदा है, वे 'मैं' में ही सर्वस्व का दिग्दर्शन करते हैं। इनके नेताओं ने तो कई बार ईश्वर को असिद्ध करने के लिये अनर्थक परिश्रम भी किये और करते रहते हैं। कुछ के तो दावे रहे हैं कि वे गणित द्वारा सिद्ध कर बता सकते हैं ईश्वर जीरो (शून्य) के बराबर है हालांकि प्रकृति समय समय पर अपनी इस वृत्ति पर उन्हें पछताने को विवश करती रहती है। न जाने वे यह क्यों भूल जाते हैं कि जीरो तथा इनफिनिटी (शून्य और असीम) पर्यायवाची शब्द हैं अतः जब वे ईश्वर को शून्य सिद्ध कर सकते हैं तो यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वे

उसकी शक्ति का पार नहीं पाते। सच ही तो है उस परम-ब्रह्म का न आदि है न अन्त।

द्वितीय वृत्ति के लोग भी एक तरह से परदे के पीछे से पहली तरह की वृत्ति के लोगों का ही कुछ हद तक प्रतिनिधित्व करते हैं। हां वे गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज जरूर करते हैं।

तृतीय वृत्ति के लोगों से मानवता की बहुत हद तक आशा की जा सकती है क्यों कि ईश्वर को अपने से ऊंचा और सर्वत्र व्याप्त मानने के कारण वे एक तिनके के विनाश में अपना भी विनाश समझेंगे और उसके हित में अपना हित समझेंगे। इससे मानवता की जननी सहिष्णुता की मांग के सिन्दूर की रक्षा होगा।

वास्तव में इस वृत्ति के लोगों की संख्या जितनी मात्रा में बढ़ेगी मानवता की भी उतनी ही आशा बढ़ेगी। अतः इस-वृत्ति को अपनाने की ओर उन्मुख होने के बजाय केवल मानवता २ चिल्लाने से मानवता हरगिज स्थापित नहीं होगी और न होगा विश्व का कल्याण।

अनुसंधान और आविष्कार जितने भी सम्भव हों जरूर होने चाहिएं। बशर्तें कि वे मानव और मानवता की रक्षा के पक्ष में हों। आखिर वे अनुसन्धान और आविष्कार ही किस मतलब के जिनसे स्वयं आविष्कर्ता सुरक्षित न रह सके।

विवेक और बुद्धि जो इस युग में बहुत ही हीनावस्था में है मानवता के सही अर्थ को समझने और उसे अमल में लाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

(उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन की पुस्तक "खुतबात" के आधार पर)

बुनियादी तालीम की बात हम लोग बहुत दिनों से सुनते चले आरहे हैं। गांधीजी बुनियादी तालीम के बहुत पक्ष-पाती थे वर्तमान उपराष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसेन भी बुनियादी तालीम के समर्थक हैं। किन्तु इस बुनियादी तालीम के बारे में डाक्टर जाकिर हुसेन के अपने कुछ निजी विचार भी हैं। इस लेख में उन्हीं विचारों का जिक्र करना है और यह बताना है कि यह बुनियादी तालीम क्या है, क्यों आवश्यक हैं और वह कैसी होनी चाहिये ?

बुनियादी तालीम का अर्थ है बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा से। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि बच्चे लिखना-पढ़ना

सीखते समय कुछ काम करना भी सीख जायं—ऐसा काम जिससे उन्हें कुछ पैसों की आमदनी हो या फिर वे पाठशाला में रहते हुये कोई ऐसा धन्धा सीख जायं कि जिसके द्वारा वह पाठशाला छोड़ने पर अपनी जीविका कमा सकें और बेकार मारे मारे न घूमें।

हमारी शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यह रहा है कि हमारे स्कूलों और कालेजों ने पुस्तकीय शिक्षा की ओर तो ध्यान दिया किन्तु इस बात की ओर ध्यान न दिया कि पढ़-लिख कर जो नौजवान संसार में अपनी जीविका प्राप्त करने के लिये निकलेगा वह उसे किस प्रकार से प्राप्त करेगा क्योंकि कोई काम करना तो उसने सीखा ही नहीं है। वह तो केवल लिखने-पढ़ने का ही काम जानता है। और केवल इस काम-मात्र से जीविका नहीं मिलती है। कमसे कम सबको तो नहीं ही मिलती है और न मिल ही सकती है। यही कारण है कि आज हमारे देश में शिक्षित बेकारों की समस्या बड़ी जटिल हो गई है। प्रति वर्ष पढ़े लिखे बेकारों की संख्या बढ़ जाती है।

बहुत अर्से से शिक्षित बेकारों को काम देने की समस्या देश की सरकार को, देश के प्रत्येक बुद्धिवादी तथा विचारवान् को व्यथित कर रही है। पूज्य गांधीजी ने इस समस्या का हल केवल बुनियादी तालीम में देखा और उसका उन्होंने प्रचार भी किया। कुछ काम भी शुरू हुआ, कुछ पाठशालाओं में बच्चों को बुनियादी तालीम भी दी जाने लगी किन्तु यह

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक बुनियादी तालीम के कार्यक्रम में जान नहीं आ पायी है। बच्चे उसमें रुचि भी नहीं लेते हैं और उसे सीख कर भी बेकार के बेकार ही बने रहते हैं।

डाक्टर जाकिर हुसेन साहब का कहना है कि बुनियादी तालीम में कोई दोष नहीं है। दोष तो है उस ढंग में जिस ढंग से वह पाठशालाओं में बच्चों को दी जाती है। इस के लिये डाक्टर साहब का कहना है कि इस तालिम को सरकारी और गैर सरकारी लोगों के पूर्ण सहयोग से चलना चाहिये। बिना एक दूसरे के सहयोग के बुनियादी तालीम का काम चल ही नहीं सकता है। बल्कि उनका कहना तो यहाँतक है कि इस काम को गैर सरकारी व्यक्ति ही अपने हाथों में ले लें। उन्हें जब आवश्यकता हो तो सरकारी व्यक्तियों से भी और सरकार से भी सहायता ले सकते हैं। सरकार इस कार्य को सरकारी तौरपर चलाना भी चाहे तो नहीं चला सकती है। उसे गैर सरकारी लोगों की सहायता लेनी ही पड़ेगी। फिर क्यों न गैर सरकारी लोग इस काम को करें और सरकार से उसके लिये सहायता लेते रहें। परन्तु काम की जिम्मेदारी अपने हाथों में रक्खें।

दूसरी बात डाक्टर जाकिर हुसेन साहब ने अपने 'खुतबात' में यह कही है कि इस तालीम में किसी भी प्रकार का धार्मिक भेद-भाव नहीं रहना चाहिए। सभी लड़कों और लड़कियों को प्रारम्भ में कमसे कम सात वर्ष तक बुनियादी

तालीम मुफ्त में दी जानी चाहिए। उनके विचार में सात वर्षों में कोई भी बच्चा अपनी पाठशाला में काम सीखकर इस योग्य अवश्य हो जायेगा कि वह स्वतंत्र-रूप से अपनी जीविका कमा सके और उसे दूसरे की नौकरी न करना पड़े।

जाकिर हुसेन साहब का कहना है कि उन्होंने यह सम्मति नहीं दी है कि केवल सात साल की ही बुनियादी तालीम दी जानी चाहिये। उनका कहना है कि सात साल की बुनियादी तालीम तो प्रत्येक दशा में दी ही जानी चाहिये और जैसे जैसे हमारी प्रान्तीय सरकारों के साधन बढ़ते जायं वैसे वैसे इस अवधि को भी बढ़ाते जायं। सात वर्ष से कम की बुनियादी शिक्षा में बच्चे इतना नहीं सीख सकते हैं और कुछ को छोड़कर सब तो इतना सीख ही नहीं सकते हैं कि वे अपना कोई धन्धा करके स्वतंत्र रूप से जीविका का अर्जन करने लगें। एक बात और भी डाक्टर साहब ने बतायी वह यह कि यह सात साल की तालीम केवल मातृ-भाषा में ही होनी चाहिये। यह तो सर्व विदित है कि बच्चे अपनी ही भाषा में कोई बात जल्द सीख सकेंगे अपनी मातृ-भाषा में कोई बात सीखने पर उनके कोमल मस्तिष्कों पर अधिक जोर भी नहीं पड़ेगा और शिक्षक जो बात सिखायेगा वह पूरी तरह से उनके समझ में भी आयेगी।

इन सात सालों में जो शिक्षा दी जाय वह बहुत ही उपयोगी होनी चाहिये। बच्चों को काम की बात सिखाने के अतिरिक्त बेकाम की ऐसी बातें नहीं सिखानी चाहिएं जिसमें

बच्चों का श्रम तथा समय तो नष्ट हो किन्तु उनके पल्ले कुछ भी न पड़े। जो बात उन्हें बतायी जाय वह उनके लिए हितकर और जो काम उन्हें सिखाया जाय वह ऐसा होना चाहिए कि बच्चे उसे सीखकर अपनी जीविका का साधन बना सकें। अगर ऐसा नहीं होता है तो फिर बुनियादी तालीम का दिया जाना और उसका नाम लिया जाना ही बेकार है।

आगे डाक्टर साहब ने बताया है कि हमें बुनियादी तालीम का मतलब खूब स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। अभी तक सब लोग इसके बारे में एकमत नहीं हैं। इस बारे में लोग भिन्न मत रखते हैं। कोई कहता है पाठशाले में बच्चे जब शिक्षा ग्रहण करने के लिए जायं तो उन्हें एक घण्टा बुनियादी तालीम भी दी जाय। कोई कोई इस समय से भी अधिक समय की मांग करता है तो कोई यह भी कहता है कि बच्चों को अपने हाथ-पैर हिलाने का अवसर मिलना चाहिए वह उसे अपनी रोजी का साधन बना सके अथवा न बना सकें। कुछ लोग कहते हैं कि काम ऐसा सिखाया जाना चाहिए कि कुछ दाम भी हाथ लगें अर्थात् उस काम से कुछ अर्थ भी लाभ हो। तात्पर्य यह कि जितने मुंह उतनी बातें सुन लीजिए।

परन्तु डाक्टर जाकिर हुसेन साहब का दृष्टिकोण इस बुनियादी तालीम के बारे में यह है कि यह तालीम ऐसी अवश्य हो कि जिससे बच्चों का बौद्धिक विकास हो वे अच्छे

नागरिक बन सकें और शिक्षा प्राप्त कर अपने लिए रोजी-रोटी के साधन जुटा सकें। आदमी नेक रास्तेपर यानी सन्-मार्ग पर भी चलता है और आदमी बद-रास्ते अर्थात् कुमार्ग पर भी चलते देखे जाते हैं। आखिर अच्छे या बुरे मार्गों पर चलने की उन्हें प्रेरणा कौन देता है? यह उसकी शिक्षा होती है जो उसे सुमार्गी अथवा कुमार्गी बना देती है। मनुष्य जो कुछ भी बनता है वह उसे उसकी शिक्षा ही बनाती है। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। यदि शिक्षा पाकर भी मनुष्य, मनुष्य न बन सका, उसमें मानवता के गुणों का विकास न हो सका तो वह शिक्षा ही नहीं है। इसी प्रकार बुनियादी तालीम प्राप्त करके भी यदि हमारे बच्चे कुछ काम की बात न सीख सकें और उन्हें अन्त में दूसरों की गुलामी करके ही जीविका के साधन जुटाने पड़े तो उसे बुनियादी तालीम और काम की तालीम की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

डाक्टर जाकिर हुसेन साहब का यह भी कहना है कि जो तालीम दी जाय उसका एक प्रारूप भी तैयार कर लेना चाहिये। बगैर नक्शे के जब कोई मकान बनाया जाता है तो वह अच्छा नहीं बनता है और उसमें बहुत सी कमियां रह जाती हैं। इस प्रारूप को बना कर देखना चाहिए कि जो तालीम दी जा रही है या जो दी गई है वह उसके अनुरूप भी है कि नहीं और क्या उस से वांछित फल की प्राप्ति हो रही है कि नहीं। अतः इस शिक्षा की एक योजना होनी चाहिये,

उसका एक प्रारूप होना चाहिए और यह शिक्षा उसी के अनुसार होनी चाहिये। हमारी शिक्षा सदैव सोद्देश्य होनी चाहिये और यह उद्देश्य होना चाहिये मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बना देना।

इसी सम्बन्ध में डाक्टर जाकिर हुसेन साहब ने एक बात बड़े मार्के की कही है। उनका कहना है कि यदि हमारी शिक्षा ने किसी को चतुर बना दिया तब भी वह सच्चे अर्थों में शिक्षित नहीं कहा जा सकता है। चोर, डाकू तथा दूसरों को ठगने वाले, दूसरों की जेबों पर हाथ साफ कर देने वाले क्या कम चतुर होते हैं? वे अपने काम में दक्ष होते हैं ये दक्ष लोग दूसरों की जेब इतनी सफाई से काट लेते हैं कि किसी को पता तक नहीं चलता। लेकिन ऐसे जेब काटने वाले को या दूसरे को धोका देकर रोजी कमाने वाले को शिक्षित कहा जा सकता है? उसे शिक्षित कहना शिक्षा का अपमान है। पढ़-लिख कोई हुनर सीख लेना, कोई धन्धा सीख लेना मात्र ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा तो अच्छे भले, सदाचारी और अच्छे नागरिक बनाने की मशीन है। अगर शिक्षा पाकर भी मनुष्य सच्चे अर्थों में शिक्षित न बनसका तो वह शिक्षा, ही नहीं है। बुनियादी तालीम के लिये तो यह बात और भी दृढ़ता पूर्वक कही जा सकती है। बुनियादी तालीम तो मनुष्य के जीवन का आधार है। यदि यह आधार कमजोर रहा तो मनुष्य के जीवन का महल उसपर अधिक दिनों तक खड़ा नहीं रह सकता।

एक और बात की ओर भी डाक्टर साहब ने हमारा ध्यान दिलाया है कि बच्चों को कोई काम इस प्रकार से सिखाया जाना चाहिए ताकि उनमें कुछ सोचने और समझने की आदत पड़े। काम के पहले सोचने की और काम के बाद उसके परिणाम को जांचने की उनमें आदत पड़े। जो लोग काम को शिक्षा का साधन बनाना चाहते हैं उन्हें भी यह बात याद रखनी चाहिए कि काम, काम होता है, चाहे वह काम हाथ का हो अथवा मस्तिष्क का। काम तो सोद्देश्य होता है और वह प्रत्येक परिणाम पर सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। काम बस कुछ करने अथवा समय काट देने का नाम नहीं है। काम के लिए कुछ त्याग भी करना पड़ता है। और काम के लिये कुछ श्रम भी करना पड़ता है। काम सच्चे अर्थों में ईश्वर की उपासना है। सच्चे हृदय से और ईमानदारी से अपना काम करना मन्दिर तथा मस्जिद में जाकर भगवान् या खुदा की कोरी उपासना करने से हजार गुना अच्छा है।

एक चौथी बात भी डाक्टर जाकिर हुसैन साहब ने बतलाई है जो बड़े महत्व की है। काम को भगवान् की पूजा अथवा उपासना तो कहा गया है किन्तु यह पूजा अथवा उपासना भी तो स्वार्थ-रहित नहीं होती। अपना स्वर्ग तो लिया दूसरों से क्या सम्बन्ध! काम की सच्ची पाठशाला यदि सच्ची-शिक्षा है तो काम को किसी अकेले का स्वार्थ-साधन नहीं बनने देना चाहिए। अतएव बुनियादी-शिक्षा के

द्वारा पाठशालाओं में जो काम सिखाया जाय वह ऐसा न हो कि पाठक उसे सीख कर केवल अपने ही उदरपूर्ति अथवा भलाई की बात तो सोचे किन्तु अपने साथियों को या अपने देश-वासियों को भूल जाय। इस काम के द्वारा तो उसका दृष्टिकोण इतना व्यापक बन जाना चाहिये कि जिसमें उसके निजी स्वार्थ के लिए उतना ही स्थान हो जितना कि दूसरे के स्वार्थ के लिये। सारांश यह कि बुनियादी तालीम पाकर मनुष्य का जीवन अपने लिये भी उपयोगी बने और दूसरों के लिये भी उपयोगी बने। फिर काम कोई भी क्यों न सिखाया जाय? कोई भी काम महत्व हीन नहीं होता है यदि उस काम से केवल एक व्यक्ति का भला न होकर अनेकों का भला होता हो।

अच्छे अथवा बुरे समाज की रचना काम से होती है और काम सीखा जाता है शिक्षा के द्वारा। अतः अच्छे काम के लिए जनहितकारी तथा कल्याणकारी काम के लिये उसी अनुरूप शिक्षा भी होनी चाहिये और यह शिक्षा प्रारंभ से अर्थात् बुनियाद से होनी चाहिए। उस दिन से होनी चाहिये कि जिस दिन बच्चा पाठशाला में भर्ती होता है। बुनियादी शिक्षा का उत्तरदायित्व जितना सरकार पर है उतना ही जनता पर भी है। सरकार तथा जनता के पूर्ण सहयोग से ही अच्छी, उपयोगी और काम की शिक्षा देकर अच्छे समाज की रचना की जा सकती है।

उठो जवानो जीवन वालो करना काम जवानी में।
साहस की सरिता उमड़ादो आग लगादो पानी में॥

उठो-उठो हुंकार चलो अब घर घर में धधकी ज्वाला।
अरे पिलादो बूढ़े और बच्चों तक को साहस हाला॥
धैर्य और साहस का पुतला अरे! कहां डरने वाला।
मातृ भूमि की लाज बचाने हंस-हंस कर बढ़ने वाला॥

जीने से बढ़कर सुख माना हमने हर कुर्बानी में।
साहस की सरिता उमड़ादो आग लगादो पानी में॥

तूर्यनाद हो रहा साथियो सर से बांध कफन निकलो।
ताण्डव नृत्य रचादो फिर से और बिजलियों से मचलो॥

खौल रहा है खून हमारा आंखों में चिन्गारी है।
अपनी इंच .इंच धरती भी हमें जान से प्यारी है॥
निष्प्राणों में प्राण फूंक दो क्या रखा नादानी में।
साहस की सरिता उमड़ादो आग लगा दो पानी में॥

अपने नन्दन कानन में यह कैसी भीषण आग उठी।
जिसे देखकर आज हमारी दसों दिशायें जाग उठी॥
लहू प्रताप शिवा का अब भी दौड़ रहा है रग रग में।
यह गान्धी का देश यहां पै शूल बिछे हैं पग पग में॥
जाग उठो दुश्मन चढ़ आया मदहोशी शैतानी में।
साहस की सरिता उमड़ादो आग लगादो पानी में॥

शीस चढ़ाकर आज हमें भारत की लाज बचाना है।
गद्दारों को गद्दारी का कुछ तो मजा चखाना है॥
वीर शिवा राणा प्रताप ने कब-कब हिम्मत हारी है?
उनही जैसी विकट परीक्षा देने की अब बारी है॥
हम अर्जुन के वंशज है, यह फूंक भरो हर प्राणी में।
साहस की सरिता उमड़ादो आग लगा दो पानी में॥

जिसने यह तन दिया उसे इस तन की आज जरूरत है।
मातृभूमि को धनो और निर्धन की आज जरूरत है॥
उत्तर की आवाज कि पूरब, पश्चिम दक्षिण जाग उठे।
हिमगिरि के दर्रे-दर्रे में सैनिक बनकर आग उठे॥

उठो साथियों, मंत्र फूंक दो तुम यह हर सेनानी में।
साहस की सरिता उमड़ा दो आग लगा दो पानी में॥

आज संसार में दुःख, शोक, चिन्ता का एकछत्र साम्राज्य दिखाई पड़ रहा है। एक समय ऐसा भी था जब अपना राष्ट्र पूरे विश्व को चरित्र, उपकार और प्रेम की शिक्षा दिया करता था। सारे विचारक भारतीय संस्कृति की ओर टक टकी बान्धे देखा करते थे इसीलिए तो 'जगद्गुरु' की उपाधि से भारत वसुन्धरा सुशोभित की गई थी। यहां के मनीषियों के चरित्र की उज्ज्वलता से बहुत से व्यक्तियों की आंखें चकाचौंध में पड़ जाती थीं। समय व्यतीत होता चला गया, स्वार्थपरता की भावनाओं ने जो स्थिति हमारी बिगाड़ी उसके परिणाम स्वरूप आज हम कहां हैं ? यह किसी से छिपा नहीं है। मानवता के स्थान पर दानवता खुलकर अपनी कलाबाजी दिखा रही है है, असुरता सुरता का उपहास कर रही है।

आज के मानव ने भी अपनी अमूल्य निधि जो चरित्र या सद्भावना के रूप में थी, गवां दी। भला बताइये जब कोई व्यक्ति अपनी धन राशि खो देता है फिर उसकी दशा समाज में कितनी दयनीय हो जाती है पर जहां चरित्र की अवहेलना की जाने लगी हो, वहां का कहना ही क्या?

इनेगिने व्यक्ति भले ही ऐसे मिलें जो अपने पूर्ण सुखी जीवन का अनुभव करते हों। सुख न तो धन में है, न मकान में है, न सन्तान में है और न पत्नी में। किसी धनी सेठ से पूछिये कि क्या आप सुख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बेचारे को रात रात भर नींद नहीं आती, कभी इधर और कभी उधर करवटें बदलता रहता है विभिन्न प्रकार की बीमारियों ने घर कर लिया है, सेठ होते हुये भी कभी शक्कर खाना छोड़ता है, तो कभी नमक का परहेज करता है। कहने का तात्पर्य यही है कि समाज का बहुत बड़ा भाग निर्धनता, अशिक्षा, बेकारी, भुखमरी तथा अभावग्रस्तता से परेशान है, कभी कभी तो आत्महत्या तक करने पर उतारू हो जाता है। दुःखी होने से बचने के लिये तमाम समाजशास्त्री, सुधारक, आध्यात्मवादी तथा राजनैतिक नेता अलग अलग प्रकार के तर्क देते हैं, कोई कहता है धन का वितरण समान रूप से कर दिया जावे तो दरिद्रता दूर हो सकती है, हमारी बुद्धि और बल में जब विषमता है तो फिर आप में समानता कैसे हो सकती है? हां यह बात जरूर मानी जा सकती है कि हाथ की पांचों अंगुलियां में जो अन्तर होता है उससे ज्यादा अन्तर समाज के विभिन्न वर्गों में न रहे। दूसरा व्यक्ति

पूर्ण रूप से शिक्षित करने का विचार व्यक्त करता है पर ध्यान से देखिये तो मालूम पड़ सकता है कि शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्ति कितने सुखी हैं ? सच बात तो यह है कि अन्धाधुन्ध आवश्यकताओं को जीवन स्तर के नाम पर बढ़ा कर ऋण ले ले कर भी पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं ५०० और ७०० रुपये मासिक पानेवाला एक उच्च अधिकारी भी अपनी गुजर नहीं कर पाता है। तीसरा विचारक तो यह कहता है कि स्वार्थ परता ने हमें झुलसा दिया है पर ईमानदारी से कार्य चलाने वाले व्यापारी, सरकारी कर्मचारी तथा अन्य ऐसे व्यक्ति अन्य आदमियों द्वारा सताये जा रहे हैं, ईमानदार और सीधे व्यक्ति को आज मूर्ख कहा जाता है, कितने अभाव में रहता है सन्तोष के आधार पर ही उसका जीवन चल रहा है अन्यथा स्वार्थी व्यक्ति उसे जीवित भी न रहने देते। इन बातों में तथ्य अवश्य है, और किसी सीमा तक सत्य भी है पर इतने से ही हमारे जीवन में सुख मिलनेवाला नहीं है।

यह भौतिकवादी युग लड़ाई झगड़े, बेईमानी, मक्कारी, युद्ध और मशीनों का युग कहा जा सकता है। संसार की परिवर्तनशीलता, क्षणभंगुरता को देख कर भी आंखें नहीं खुलती हैं, हर बात को विदेशी विचारकों के माध्यम से मानने की फैशन बढ़ती जा रही है। आधुनिक अर्थशास्त्र भी सांसारिक पदार्थों में फसने तथा आवश्यकताओं को बढ़ाते रहने की बात कहता है, हर वस्तु को अपनी मानना ही परेशानी की जड़ है यदि हममें यह भावना आजावे कि सब

कुछ ईश्वर का है, हम तो केवल नौकर, दास, रखवाली करने वाले या बगीचे के माली के समान हैं तो सब झंझट दूर हो सकते हैं पर अहंभाव के कारण छोटी २ वस्तुओं में सुख और दुःख का अनुभव करते हैं, रोते हैं और कभी हंसते हैं। इसे मानसिक कमजोरी कहा जा सकता है, क्यों कि लाभ हानि के बारे में पूरी तरह से जानते हुये भी जानबूझ कर बुराइयों के रास्ते पर बढ़ते चले जा रहे हैं। यदि थोड़े में यह कह दें कि मानवता मिटती जा रही है और उसके स्थान पर दानवता अपना कब्जा करती जारही है तो कोई बुरा नहीं।

फरवरी ६४ के दूसरे सप्ताह की घटना है हमें मोहन खेड़ा से भोपावर जो जैन धर्म का प्रसिद्ध तीर्थ है वहां जाने का मोटर द्वारा अवसर मिला। मार्ग में मोटर रुकवा कर दो तीन सज्जन चढ़े, उनके लिये मोटर लेट भी हुई, जाने पर किराया मांगा गया तो वे अपनी इच्छा से आधा किराया देने लगे, मोटर कन्डक्टर द्वारा पूरा किराया मांगने पर उन्होंने न दिया और झगड़ा करने तक पर तैयार हो गये, बाद में यात्रा पूर्ण हो जाने पर बिना किराया दिये उतर गये यह तीर्थ यात्रा का फल और प्रसाद है। सज्जनता रही कहां है ? फिर भी अपनी योग्यता पद तथा उपाधियों के लिये डींग हांकते हैं, और आंकड़ों के द्वारा यह सिद्ध करने की हामी भरते हैं देश प्रगति पथ पर बढ़ता जा रहा है। अहिंसा के स्थान पर हिंसादेवी विराजती जा रही है। महात्मा गान्धी ने एक

बार कहा था—"मेरे गुजर जाने के बाद कोई यह न कहने पाये कि गांधी ने लोगों को नामर्द बनना सिखाया था। अगर आप सोचते हों कि मेरी अहिंसा कायरता के बराबर है या उससे कायरता ही पैदा होगी तो आपको उसे छोड़ देने में जरा भी नहीं हिचकना चाहिये। आप निपट कायरता से मरें, इसकी अपेक्षा आपका बहादुरी से प्रहार करते हुये और सहते हुए मरना मैं कहीं बेहतर समझूंगा।"

बहादुरी से मरने की बात कौन कहे आज तो भाई-भाई दुश्मन होते जा रहे हैं, यही स्थिति दो देशों की है भाई भाई की आवाज लगाने वाला चीन हमारा शत्रु बन गया है। एक समय यह था जब जंगली जानवरों से रक्षा हेतु आश्रमों में तथा उनके आस पास आग जलती रहती थी, राजाओं के आदेशों से भी ऐसे जीव जन्तुओं को राज्य की जनता के आराम के लिये मार दिया जाता था, पर अब तो मनुष्य मनुष्य को ही मार देता है, थोड़ी सी कहा सुनी हुई कि मामला पार, उसका बदला, चाकू, छुरी, बंदूक, तमंचा या तलवार से ले लेते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती का उदाहरण हमारे सामने है उन्हें एक बार जब धोखे से विष दिया गया तो विष देनेवाले का पता मालूम पड़ने पर उसे दण्ड से बचाते हुए यही कहा—"मैं संसार को बन्दी बनाने नहीं वरन् कैद से छुटकारा दिलाने आया हूं।" यह उदारता भारतीय सन्त की है। विदेशी महात्मा सुकरात एक बार अपना व्याख्यान सुना रहे थे कि पीछे से अचानक

किसी दुष्ट व्यक्ति ने पीठ पर लात मार कर उन्हें नीचे गिरा दिया, अपमान के स्थान पर वरदान देने वाले सन्त धीरे से अपने को सम्भालते हुये उठे और अपने उपदेश को आगे सुनाने लगे, उपदेश को सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, सभी श्रोता एक स्वर में उस दुष्ट को दण्ड देने के लिये कहने लगे पर सुकरात ने जो उत्तर दिया उसे अच्छी तरह विचार लीजिये—"कोई गधा हमारे लात मारे तो क्या हम भी गधा बन कर उसके बदले में लात मारें, खास तौर से मनुष्य के लिये यह बात शोभनीय भी नहीं है।" इस समय का भौतिक वादी होता तो जाने कितने हथियारों का बदले के लिये प्रयोग करता।

इन सब बातों से हमें यही जान पड़ता है कि जितनी अधिक ईश्वर की कृपा हम पर होती है उतनी ही हाय हमारी बढ़ती जाती है लखपति, करोड़ पति बनने का और करोड़ पति, अरब पति बनने का स्वप्न देख कर समाज के भोले भाले उपभोक्ताओं को मन माने ढंग से लूटता है। हमें अपनी वर्तमान स्थिति पर सन्तोष नहीं होता, तत्कालीन आवश्यकताओं को पूर्ण करना तो हमारा ध्येय रहता ही है, इसके साथ ही साथ आगे की योजनाएँ बनाते रहते हैं कि किसी ने कहा भी है 'सामान सौ वर्ष का पर पल की खबर नहीं' यह बात ठीक है। अपने जीवन को खाने, पीने, मौज करने तथा विकास करने के कार्यक्रमों के साथ अगली पीढ़ियों की समृद्धि की भी योजना रहती है। यह तृष्णा तो न जाने कितनी बढ़ती

जा रही है ? आवश्यकताओं तथा कमियों को तो जैसे तैसे पूरा भी किया जा सकता है पर तृष्णा को पूर्ण करना बड़ा कठिन है। इस तृष्णा के पीछे पड़े रहने से ही हमारा धर्म कर्म समाप्त होता जा रहा है, सुबह से रात्रि के ११ बजे तक व्यक्ति मशीन की तरह लगा रहता है और ५ मिनट का समय ईश्वर साधना के लिये नहीं निकाल पाता। हमारा विवेक, ज्ञान, बुद्धि सबको ही इधर जुटाते रहते हैं। हमारा काम जीवन उपयोगी वस्तुओं से जब नहीं चलता और दिखावट की प्रतियोगिता में आगे बढ़ना चाहते हैं तब नई नई, रंग बिरंगी, सुन्दर तथा उत्तम वस्तुओं की खोज में लगते हैं। आये दिन नवीन आविष्कार होते जा रहे हैं, अनुसंधान कार्य में कितने ही व्यक्ति लगे हुए हैं, कारखानों में रात और दिन उत्पादन होता है, विदेशी वस्तुएं शान और शौकत की यहां आती हैं फिर भी सुख नहीं मिलता।

कल्पना के सागर में गोता लगानेवाले व्यक्ति कुछ नहीं कर सकते, सारा जीवन इन इच्छाओं की पूर्ति में ही लगा दिया जावेगा फिर भी थोड़ी बहुत अपूर्ण ही रह जावेंगी, इस लिये इन्हें असीमित और अनन्त कहा जाता है, इनका कोई ओर छोर नहीं। पड़ोसी की अच्छी वस्तु देखकर ही हमारी नियत खराब हो सकती है, साधन बढ़ते जाते हैं, आय भी बढ़ा रहे हैं, फिर भी पूरी नहीं पड़ती। राजाओं और महाराजाओं के जीवन की अनेक घटनाएँ पढ़ते और सुनते हैं, जिनसे उनकी व्याकुलता की जानकारी ही मिलती है

क्योंकि विपुल सामग्री होते हुये भी फौज बढ़ाना, दूसरे राजाओं पर आक्रमण कर उन्हें कैद करना, उनकी पत्नियों तथा बेटियों को पकड़कर अपने महल में रखना, तृष्णाओं का ही सबूत है। और जिनके पास साधन कम होते हैं वे चोरी, डकैती, रिश्वत, उठाई गिरी और जेबकट जैसे कामों का आसरा लेते हैं।

समाज की इन भयंकर समस्याओं को दूर करने के लिये अध्यात्मवाद का सहारा लेना पड़ेगा क्योंकि भारतीय अक्षय सम्पत्ति तो अध्यात्म ही है मानव की गुत्थियों को सुलझाने का एकमात्र उपाय इसमें ही मिलता है। अतः समाज में सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि समस्त प्राणियों को अपने समान समझा जावे। शान्ति की खोज के लिये कहीं दूर नहीं जाना अपने हृदय को ही टटोलना पड़ेगा। अंग्रेजी कवि फ्रैंक मैनसेल ने कहा है ओह! शान्ति की प्राप्ति तो मन और आत्मा में ही खोजने पर आपको होगी" दुःख के स्थान पर सुख की स्थापना यदि करनी है तो सभी व्यक्तियों को अपने समान समझने का पुरातन सिद्धान्त अपनाना पड़ेगा यही समस्याओं के निराकरण का संक्षिप्त और सारयुक्त उपाय है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और लाभ

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पतियों (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु (गर्मी के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी के दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शास्त्रीय विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिलायें तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और अन्य लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सलाह देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए ही उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए लाभ

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तेल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हिसाब

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधिक वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हाथों को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरीके बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचार है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालिश कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधा न होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हाथों से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण से
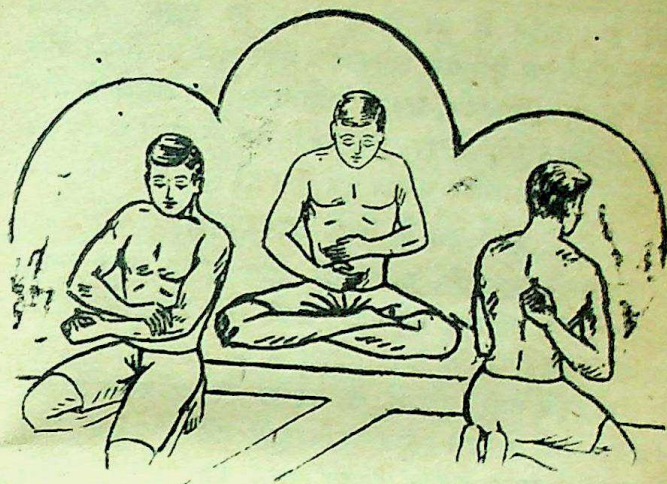
यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध–बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्य-मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट–पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म अवयव नीरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की दृष्टि से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ और अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के विषय में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी ऋषि--मुनि, साधु--सन्त, त्यागी-वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्त्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र-छात्राओं, (लिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज के) को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जैसे, आंखों की दृष्टि सतेज रहेगी। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्मरण शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति रहेगी, स्नायु संस्थान तथा रस ग्रन्थियों में शक्ति का संचार होगा।

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ २ स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में बल, समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ सबको प्राप्त होता है। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शहर अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट से खरीद करें। दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

कर्मवाद

जब हम दुनिया की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें इस दुनिया का विचित्र सा अनुभव होता है, यह दुनिया हमें रहस्यमयी लगती है। इस दुनिया के रहस्यों को सुलझाने का प्रयत्न आधुनिक युग में विज्ञान कर रहा है। आज-कल लोगों की आस्था विज्ञान पर है और लोग उसीकी दुहाई देते हैं, लेकिन अभी भी बहुत सारे रहस्य तथा समस्याएँ हैं जिनतक विज्ञान की पहुँच भी नहीं है। उन समस्याओं को आधुनिक वैज्ञानिक, पाश्चात्य विद्वान तथा दार्शनिक सिर्फ आकस्मिक घटना या रहस्य मानकर चुप बैठ जाते हैं। लेकिन इस प्रकार आकस्मिक घटना या रहस्य कहने से हमलोगों को न तो बौद्धिक संतुष्टि मिलती है और न हृदय की शांति। जहांतक भारतीय आचार्यों, ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिकों

का प्रश्न है वे कम से कम आधुनिक वैज्ञानिक, पाश्चात्य विद्वान तथा दार्शनिकों की तुलना में इस स्थान पर ज्यादा आलोचनात्मक तथा अगाधविश्वासी हैं। अब आप हमसे अवश्य पूछेंगे कि आखिर वह कौन सी समस्या है जिसे भारतीय आचार्यों, ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिकों ने अपनी प्रखर विद्वता से सुलझाया है ? यूं तो ऐसी अनेक समस्याएं हैं जिनका समाधान हमारे भारतीय आचार्य ही कर पाये हैं, उन्हीं में से एक कठिन समस्या यह भी है कि—"यदि हम सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं तब फिर कोई व्यक्ति स्वस्थ, धनी और दूसरा अस्वस्थ तथा निर्धन क्यों है ? इस असमुचित विभाजन का क्या समाधान है क्या व्याख्या है ? असमुचित विभाजन की समस्या का समाधान नास्तिक तथा आस्तिक दोनों के लिये ही कठिन कार्य हो जाता है। आस्तिक के लिए यह असमुचित विभाजन प्रमाणित करता है कि ईश्वर अन्यायी है क्योंकि वह दुनिया निर्माता, पालक तथा संहारक है तो फिर बिना किसी कारण के कोई क्यों दुःख भोगेगा और दूसरा सुख ? फिर नास्तिक के लिये असमुचित विभाजन यह दर्शाता है कि जिस दुनिया में वह रहता है उसमें जो एकता, सामंजस्य दिखाई पड़ता है वह सभी भ्रम तथा धोखा है क्योंकि बिना किसी कारण के कोई गरीब के घर जन्म लेता है तो दूसरा धनी के घर, कोई अन्धा ही जन्मता है तो कोई पांचों इन्द्रियों से युक्त। अतः यथार्थ में इस दुनिया में असामंजस्य अव्यवस्था का साम्राज्य विद्यमान है और इसलिए इस दुनिया का न कोई मूल्य है न

कोई अर्थ। अतः इस असमुचित विभाजन की समुचित व्याख्या अवश्य होनी चाहिये। भारतीय आचार्य, ऋषि-मुनि तथा दार्शनिक डंके की चोट पर इस समस्या का समाधान अपने कर्म-सिद्धांत को प्रतिपादितकर करते हैं कि यथार्थ में कोई अमीर-कोई गरीब, कोई निर्बल-कोई सबल इत्यादि अपने ही पूर्व-जन्म के कर्मों के फल के अनुसार होता है।

अब प्रश्न उठता है कि भारतीय दर्शन तथा धर्म का सर्वमान्य कर्म का सिद्धांत क्या है? इसे हम एक प्रचलित लोकोक्ति के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं कि—"जैसी करनी वैसी भरनी।" अतः स्पष्ट हो जाता है कि हमारे द्वारा किये हुये कर्म का फल नष्ट नहीं होता है और साथ ही हमें बिना किये हुये कर्म का फल भी नहीं मिलता है।

इस कर्म-सिद्धांत का प्रथम दिग्दर्शन ऋग्वेद काल के ऋषियों की काव्य-कल्पना में ऋत के रूप में हुई। ऋत सदाचार का नियम है और इसीलिए यह निवृत्ति से सर्वथा भिन्न है जो कि दुराचार, असत्य तथा अव्यवस्था का नियम है। कर्म-सिद्धांत को ही न्याय-वैशेषिक में "अदृष्ट' और और मीमांसा दर्शन में "अपूर्व" कहते हैं।

जिस तरह कार्य-कारण का सिद्धान्त भौतिक जगत् का नियम है उसी तरह कर्म का सिद्धांत नैतिक जगत् का नियम है। कारण-कार्य का सिद्धांत का अर्थ है कि प्रत्येक घटना का एक कारण है और कोई भी घटना बिना कारण के नहीं है। अब चूंकि यह कारण-कार्य का सिद्धांत इस भौतिक

जगत् का नियम है अतः इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी भौतिक कारण भौतिक कार्य को उत्पन्न अवश्य करेगा। उदाहरणार्थ—एक भौतिक क्रिया जैसे हाथ को आग में देना, अवश्य ही भौतिक-कार्य जलन को उत्पन्न करेगी। इतना ही नहीं इसके विपरीत प्रत्येक भौतिक कार्य की उत्पत्ति भौतिक कारण से ही होगी। जैसे कि उपरोक्त उदाहरण में हाथ के जलने का कारण आग है। अब उसी प्रकार कर्म-सिद्धांत के अनुसार भी प्रत्येक नैतिक क्रिया नैतिक कार्य की ही उत्पत्ति करेगी तथा प्रत्येक नैतिक कार्य का एक कारण होगा। उदाहरणार्थ—बुरे कर्म या अनैतिक क्रिया दुःख तथा क्लेश को दंडस्वरूप उत्पन्न करती है तथा अच्छा कर्म या नैतिक कार्य पुरष्कार स्वरूप आनन्द, सुख को उत्पन्न करती है। इस तरह ये सभी दुःख, क्लेश, आनन्द तथा सुख जो हमें अपने जीवन में मिलता है वह अपने ही द्वारा किये गये भूत-कर्म के परिणाम-स्वरूप है।

यह कर्म का सिद्धांत कारण-कार्य के सिद्धांत से ज्यादा मौलिक (फण्डामेन्टल) तथा विस्तृत (कॅम्प्रीहेनसिव) है क्योंकि कर्म का सिद्धांत सार्वभौम कार्य-करण का सिद्धान्त (युनिवर्सल लॉ आफ मोरल काउजेशन) है तथा हम लोगों की दुनिया एक नैतिक-मंच (मोरल) है जहां सभी प्राणी नाटक के पात्र के समान अपनी भूमिका जो उन्हें पूर्व जन्म के कर्मानुसार मिलती है, निभाता है। इस तरह सभी प्राणी नैतिक कार्यकरण की जंजीर में बंधे हुए हैं। अतः यदि यह भौतिक

जगत् नैतिक-मंच के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तब इस भौतिक-जगत् का कार्य-कारण का सिद्धान्त कर्म के सिद्धान्त से स्वतंत्र नहीं माना जा सकता है। यथार्थ में यह भौतिक कार्य-कारण का सिद्धांत नैतिक कार्य-कारण के सिद्धान्त के अधीन तथा अंतर्गत है जिसके द्वारा यह नियंत्रित होती है।

जैसा कि अब स्पष्ट है कि हमारा प्रत्येक कर्म अवश्य ही अपने फल (इफेक्ट) को उत्पन्न करेगी और हम तदनुरूप दंडित या पुरस्कृत किये जायेंगे। इस सिद्धान्त या नियम का उल्लंघन कभी भी तथा किसी भी अवस्था में नहीं किया जा सकता है। डॉ. राधाकृष्णन् इसी बात की पुष्टि करते हैं कि—"We can not arrest the process of moral evolution any more nor we can stay the sweep of tides or the course of stars. The attempt to over leap the law of karma is as the attempt to leap over one's shadow."

भगवान् बुद्ध भी इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं कि:—

न अंतरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विवरं प्रविश्य।
न विद्यते स जगति प्रदेशः यत्र स्थितो मुच्यते पापकर्मा।

अर्थात् न तो आकाश में न तो समुद्र के मध्य में और न तो संसार के किसी भी स्थान में जाकर मनुष्य अपने पाप-कर्मों के फल से बच सकता है।

चूंकि प्रत्येक कर्म फल पैदा करता है अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कर्म में फल उत्पन्न करने की शक्ति रहती है। इसी फल उत्पन्न करने की शक्ति—दृष्टिकोण से कर्म का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है:—

(१) संचित कर्म, (२) प्रारब्ध कर्म, (३) संचीयमान कर्म।

(१) संचित कर्म उस कर्म-शक्ति को कहते हैं जो हमारे भूत में किये गये कर्मों से उत्पन्न होते हैं लेकिन जिसके फलों का प्रारंभ नहीं हुआ रहता है।

(२) प्रारब्ध कर्म भी हमारे भूत में किये गये कर्मों से उत्पन्न होता है लेकिन जिसके फलों का प्रारंभ इस जीवन में हो चुका रहता है। वर्तमान जीव का सुःख-दुःख, धन-सम्पत्ति आदि प्रारब्ध कर्म के ही फल हैं।

(३) संचीयमान या क्रियमाण कर्म उसे कहते हैं जिसका संचय इस जीवन में होता है।

अब हम लोगों के सम्मुख यह समस्या उठती है कि चाहे हम अच्छा कर्म करें या बुरा, हमें उसके फल भुगतने हैं और फल भुगतने के लिये हमें एक जन्म से दूसरा जन्म लेना पड़ता है, तब इस जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा कैसे मिलेगा? बुरा कर्म यदि लोहे की हथकड़ियां है तो अच्छा कर्म सोने की हथकड़ियां हैं, जबतक जन्म-मरण के चक्र में हम हैं तब तक हम बन्धनमें हैं। अतः इस बंधन से मुक्ति कैसे मिल सकती? इस जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा कैसे मिल सकता है? यहां कुछ लोग कह सकते हैं कि चूंकि अच्छा या बुरा कर्म ही हमें बंधन में डालता है अतः कर्म करना ही छोड़ दें। जब कर्म करेंगे ही नहीं तब कर्म-फल की उत्पत्ति कैसे होगी और जब कर्म-फल की उत्पत्ति होगी ही नहीं तब उसके भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता है, अर्थात् न रहेगी

बांस न बजेगी बांसुरी।

उपरोक्त पूर्णतः निष्क्रिय बनने का सिद्धान्त या विचार तर्कहीन है क्योंकि कर्म को पूर्णतः त्याग कर चुपचाप बैठना तामस कर्म हो जाता है और फिर इस तामस कर्मों के फलों को भोगने के लिये जन्म लेना पड़ेगा।

यथार्थ में कर्म को पूर्णतः त्याग कर निष्क्रिय बनना तो मृत्यु के समान है लेकिन जबतक हम जीवित हैं तबतक पूर्णतः निष्क्रिय होना सर्वथा असंभव है क्योंकि श्वास क्रिया, सोना बैठना इत्यादि कर्म तो होने ही रहेंगे। गीता इसकी पुष्टि निम्नलिखित श्लोक में करती है:—

'न हि कश्चित् क्षणम् अपि जातु तिष्टति अकर्म कृत्।
कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः॥'

अर्थात्—कोई व्यक्ति एक क्षण के लिये भी निष्क्रिय नहीं हो सकता है क्योंकि प्रकृति के गुण उससे बलपूर्वक काम करवाते हैं।

मीमांसकों ने कर्मबंधन से मुक्ति पाने का एक सहज मार्ग ढूंढ़ निकाला है। उनके अनुसार कर्म को हम निम्नलिखित चार वर्गों में बांट सकते हैं:—

(१) नित्य कर्म; (२) नैमित्तिक कर्म, (३) काम्य कर्म, (४) निषिद्ध कर्म।

(१) नित्य कर्म—दैनिक-कार्य को ही नित्य कर्म कहते हैं, जैसे—स्नान-पूजा आदि।

(२) नैमित्तिक—अनिष्ट ग्रहों की शांति या प्रायश्चित के लिये किये गये कर्म को नैमित्तिक कर्म कहते हैं।

(३) काम्य कर्म—जब कोई किसी विशेष इच्छा की पूर्ति के लिये विशेष प्रकार का कार्य शास्त्रानुसार सम्पादित करता है तब वैसे कर्म को काम्य कर्म कहते हैं, जैसे-पुत्र होने के लिये या वर्षा होने के लिये यज्ञ का करना।

(४) निषिद्ध कर्म—जैसा कि नाम से ही ज्ञात हो जाता है कि यह निम्नकोटि का कर्म है। कभी-कभी मनुष्य सभ्यता से नीचे गिरकर शास्त्रों द्वारा त्याज्य कर्म को करता है तो वैसे कर्म निषिद्ध कर्म कहे जाते हैं, जैसे-मदिरापान या चोरी करना इत्यादि।

उपरोक्त चार कर्मों में से नित्य कर्म तो हमें करने ही हैं क्यों कि उन्हें नहीं करने पर पाप लगता है और नैमित्तिक कर्म तो कोई निमित्त उपस्थित होने पर अवश्य करना चाहिये, अब शेष दो बचे काम्य तथा निषिद्ध कर्म। इन दोनों में निषिद्ध कर्म तो करना ही नहीं चाहिये और काम्य कर्मों का भी त्याग करना आवश्यक है क्यों कि फलाकांक्षा से किये गये सभी कर्म बन्धन के कारण हैं अर्थात् फलाकांक्षा से किये गये कर्म के फलों को भोगने लिये हमें बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार निषिद्ध कर्मों को त्यागने से नरक जाने से बच जाते हैं और फिर काम्य कर्मों को त्यागने से न तो इस लोक में जन्म लेना पड़ता है और न स्वर्ग ही की प्राप्ति होती है। अतः जब आत्मा यह लोक, नरक तथा स्वर्ग इन

तीनों गतियों से छूट जाता है, तब आत्मा के लिये मोक्ष के के अतिरिक्त कोई दूसरी गति शेष नहीं बच जाती। इस प्रकार मीमांसकों के अनुसार कुछ कर्मों को त्यागने से तथा कुछ कर्मों को शास्त्रानुसार करते रहने से आप ही आप मुक्ति मिल जाती है। इस वाद को 'कर्ममुक्ति' या 'नैष्कर्म्यसिद्धि' कहते हैं।

मीमांसकों द्वारा बताये गये कर्मबन्धन से मुक्ति का मार्ग किसी भी उपनिषद् में नहीं बतलाया गया है। इन लोगों ने केवल तर्क के आधार पर अपने इस मार्ग का प्रतिपादन किया है लेकिन इनका तर्क छिछला है। यथार्थ में कर्म के द्वारा कर्म से मुक्ति पाने की आशा वैसा ही व्यर्थ है, जैसा एक अन्धा दूसरे अन्धे को रास्ता दिखला कर पार करा दे। जैसा कि हम लोगों ने देखा है कि इन लोगों के अनुसार काम्य तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग करना ही असंभव है। उदाहरणार्थ—हिंसा या मद्यपान निषिद्ध कर्म हैं लेकिन दवा के रूप में लोग शराब सेवन करते हैं। फिर उसी प्रकार श्वास लेने तथा पलक को खोलने तथा बन्द करने में ही कितने जीवों का नाश हो जाता है लेकिन वे लोग यह कह सकते हैं कि यदि कोई निषिद्ध कर्म हो जाय तो नैमित्तिक कर्मों के द्वारा प्रायश्चित कर सब दोषों से मुक्त हो सकते हैं। हालांकि यह भी मानने योग्य नहीं है क्योंकि केवल नैमित्तिक प्रायश्चित से सभी दोषों का नाश नहीं हो सकता है। खैर! यदि उनकी हम उपरोक्त बातों को मान भी लें तब भी उनके द्वारा बताया

हुआ मार्ग तर्क संगत नहीं प्रतीत होता है क्यों कि उनके द्वारा बताये हुए मार्ग से हम क्रियमाण कर्म से होने होने वाले फल को रोक सकते हैं लेकिन संचित कर्मों को नष्ट नहीं कर सकते और प्रारब्ध कर्म तो हमें भोगना ही है क्योंकि यह छूटे हुए तीर के समान है जो वापस नहीं लौट सकते। इस प्रकार इनकी बताई गये युक्ति से हम प्रारब्ध कर्म को भोगते हुए क्रियमाण कर्म से होने वाले फलों से बच सकते हैं लेकिन हमें संचित या अनारब्ध कर्मों के फल को भोगने के लिये पुनः जन्म लेना ही पड़गा।

अभी हम लोगों ने यह देखा है कि मीमांसकों की युक्ति को 'नैष्कर्म्यसिद्धि' भी कहते हैं लेकिन मीमांसकों की युक्ति को यथार्थ में 'नैष्कर्म्य' कहना हमारी भूल होगी क्यों कि यह वह युक्ति नहीं है जिससे कि कर्म करने पर भी कर्ता को बंधन न हो। गीता भी इसी बात की पुष्टि इस प्रकार करती है—"न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यम् पुरुषः अश्नुते।
न च सन्यसनात् एव सिद्धिम् समधिगच्छति।।"

अर्थात्—'कर्म न करने से नैष्कर्म्य नहीं होता और छोड़ देने से सिद्धि भी नहीं मिलती।' यथार्थ में नैष्कर्म्य का अर्थ कर्म का त्याग नहीं बल्कि कर्म-फल का त्याग है गीता इस नैष्कर्म्य की शिक्षा इस प्रकार देती है—

"कर्मण एव अधिकारः ते मां फलेषु कदाचन्।
मां कर्मफल हेतु भू माते संगः अस्तु अकर्मणि।।"

अर्थात्—तेरा अधिकार काम करने में है उसके फल में नहीं और कर्मफल तुम्हारा प्रेरक न बने तथा साथ ही तुम निष्क्रिय मत बनो।" अब यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म-फल त्याग में ही यथार्थ नैष्कर्म्य निहित है लेकिन कर्म-फल त्याग ज्ञानी मनुष्य ही कर सकता है। इसलिये यह ठीक ही कहा गया है कि 'कर्मणा बध्यते जन्तुः विद्यया तु प्रमुच्यते' अर्थात् कर्म से प्राणी बांधा जाता है, और विद्या से उसकी मुक्ति होती है। गीता में भगवान् कृष्ण ने भी अर्जुन से कहा है कि—"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन" अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि से सभी कर्म भस्म हो जाते हैं। फिर महाभारत में भी कहा गया है कि—

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्वात्मा संपद्यते पुनः॥

अर्थात्—जिस तरह भूना हुआ बीज नहीं उग सकता, उसी तरह जब ज्ञान से (कार्यों के) क्लेश जल जाते हैं तो वे आत्मा को फिर से प्राप्त नहीं होते।"

उपनिषदों में भी इसी बात की पुष्टि की गई है कि क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।" (मु० २।२।८) अर्थात् परब्रह्म का ज्ञान होने पर उसके सब कार्यों का नाश हो जाता है। 'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः (श्वे०५।१३,६।१३) अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान होने पर सब पाशों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सभी भारतीय आचार्य, ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिकों ने इसी मत को प्रतिपादित किया है कि

'ज्ञान' ही एक सच्चा मार्ग है जो कर्मबन्धन से मुक्ति दिला सकता है। लेकिन यहां यह स्मरणीय है कि 'ज्ञान' शब्द का अर्थ किताबी ज्ञान या नामरूपात्मक जगत् का ज्ञान नहीं है बल्कि इसका अर्थ यथार्थ सत्ता का ज्ञान या ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान है।

इस कर्म-सिद्धांत के विरुद्ध कुछ आपत्तियां उठाई जाती हैं उनका समाधान करना अत्यंतावश्यक है। मीमांसा, जैन, बुद्ध तथा सांख्य दर्शन जो निरीश्वरवादी हैं, उनके विरुद्ध यह आपत्ति उठाई जाती है कि चूंकि ये दर्शन ईश्वर में विश्वास नहीं करते अतः सामंजस्य तथा सुव्यवस्था जो संसार में हमें अनुभव होती है उसकी व्याख्या ईश्वर से स्वतंत्र कर्म-सिद्धांत के द्वारा ही सिर्फ नहीं की जा सकती है क्योंकि ईश्वर यानि विवेकपूर्ण सत्ता के अभाव में कर्म का सिद्धान्त अंधा हो जाता है। खैर जो हो, यह आपत्ति ईश्वरवादी दर्शन जैसे न्याय-वैशेषिक आदि के विरुद्ध नहीं उठती है क्योंकि ये दर्शन कर्म-सिद्धान्त को ईश्वर द्वारा नियंत्रित मानता है।

दूसरी आपत्ति इसके विरुद्ध यह उठाई जाती है कि यदि कर्म-सिद्धांत को ईश्वर द्वारा नियंत्रित मानते हैं तब साथ ही साथ हमें ऐसा भी प्रतीत होता है कि कर्म-सिद्धांत भी ईश्वर को नियंत्रित करता हैं क्योंकि ईश्वर को संसार की रचना पूर्व जन्मों में किये गये जीवों के कर्मानुसार ही करनी पड़ती है। इस प्रकार यह ईश्वर को सीमित कर देती है और

चूंकि ईश्वर को पूर्णरूपेण कर्म-सिद्धांत के अनुसार चलना पड़ता है अतः ईश्वर को हम सर्वशक्तिमान तथा दयालु नहीं कह सकते। लेकिन यह आपत्ति अज्ञानतावश उठती है। सिद्धांत या नियम का अर्थ शक्ति नहीं है बल्कि पथ है जिसके अनुसार कोई वस्तु अपने स्वभावानुसार कार्य करती है। ईश्वर सिर्फ सर्वशक्तिमान या दयालु नहीं बल्कि नैतिक सम्राट भी है अतः कर्म का सिद्धांत ईश्वर के स्वभाव या शक्ति को सीमित नहीं करता बल्कि यह तो दर्शाता है कि किस तरीके, पथ या रास्ते से ईश्वरीय या आध्यात्मिक शक्ति अपने को इस नैतिक व्यवस्थित संसार में प्रकाशित करती है।

सबसे प्रमुख आपत्ति कर्म-सिद्धान्त के विरुद्ध यह उठाई जाती है कि यह मानव स्वतंत्रता का अपहरण करती है। दूसरे शब्दों में कर्म सिद्धांत को मान लेने पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारा वर्तमान जीवन पूर्णतः भूत कर्मों के फलों से नियंत्रित है तब हम कैसे अच्छा कर्म कर अपने भावी जीवन को सफल तथा उन्नत बना सकते हैं? अतः कर्म-सिद्धांत से नियंत्रित विश्व में मानव के लिये स्वतंत्र-संकल्प नामक कोई भी चीज नहीं रह जाती है। इस प्रकार की आपत्ति उठानेवालों के प्रति हमें कहना पड़ेगा कि उन्हें भारतीय-दर्शन का यथार्थ तथा समुचित ज्ञान नहीं है। भारतीय ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिकों की दृष्टि में मनुष्य का शरीर अनित्य, अचेतन, नामरूपात्मक, मायावीसृष्टि या प्रकृतिसृष्टि है, इसके विपरीत आत्मा जो शरीर का अधिष्ठान है नित्य, चेतन, अनामरूपात्मक, स्वयं ब्रह्मस्वरूप है। इस तरह मन जो प्रकृति का विकार या मायावीसृष्टि है उसका गुण

"इच्छा", आत्मा का गुण कैसे बन सकता है ? इसलिये "इच्छा-स्वतंत्र" के स्थान पर हमें "आत्म-स्वतंत्र," शब्द व्यवहार करना चाहिये। यथार्थ स्वातंत्र्य न तो शरीर को, न मन को और न बुद्धि को प्राप्त है बल्कि यह सिर्फ आत्मा के स्वरूप में ही निहित है। प्रत्येक भारतीय दार्शनिक आत्मा को "मुक्त" मानता है, भले ही अज्ञानतावश वह बंधन में पड़ जाता है या हमें प्रतीत होता है। अतः यह सच्चा स्वातंत्र्य न तो कोई आत्मा को दे सकता है और न कोई उससे छीन ही सकता है।

सांख्य तथा अद्वैत-वेदांत के अनुसार आत्मा कर्त्ता नहीं है। अतः जब कोई कर्म करेगा ही नहीं तब उसे उसके कर्मों का फल कैसे भोगना पड़ेगा ? इसलिये दोनों दर्शनों के अनुसार आत्मा का वास्तविक बंधन नहीं होता है। यथार्थ में प्रकृति या माया स्वयं अपने को बंधन में बांधती है तथा मुक्त करती है। लेकिन पुरुष अज्ञानतावश प्रकृति को अपनी समझने लगता है, फलस्वरूप उसके सुख दुःख को भी अपना सुख दुःख समझने लगता है। लेकिन पुरुष तो बिलकुल ही मुक्त तथा सांसारिक सुख-दुःख से निर्लेप रहता है। फिर अद्वैत-वेदांत के अनुसार आत्मा तो स्वयं ब्रह्मस्वरूप है लेकिन अज्ञानतावश वह अपने स्वरूप को भूल जाता है तथा सांसारिक वस्तुओं के पीछे दौड़ने लगता है और उसको पाकर खुश तथा नहीं पाकर दुःखी होता है। अतः दोनों दर्शनों के मतानुसार आत्मा का वास्तविक बंधन नहीं होता इसीलिये मुक्ति का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि जिस प्रकार एक स्त्री अपने गले में पड़े हार को इधर-उधर ढूंढ़ती है लेकिन जब

उसे यह मालूम हो जाता है कि हार गले में ही है.तब उसे कोई नयी वस्तु नहीं मिलती है बल्कि सिर्फ इसका ज्ञान मात्र हो जाता है। उसी प्रकार बंधन की अवस्था में पुरुष या आत्मा अपनी स्वतंत्रता को खो नहीं देता बल्कि अज्ञानतावश अपने स्वरूप को भूल जाता है। अत: मुक्ति की अवस्था में उसे सिर्फ अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान-मात्र हो जाता है, किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं।

फिर भी यहां पर कुछ लोग यह आपत्ति उठा सकते हैं कि सांख्य तथा अद्वैत-वेदांत के अतिरिक्त अन्य दर्शन जैसे जैन, न्याय-वैशेषिक आदि तो आत्मा को कर्ता मानते हैं तथा बंधन को वास्तविक मानते हैं वहां तो हमें मानना पड़ेगा कि उस अवस्था में आत्मा की स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। लेकिन यथार्थ में ये दर्शन तर्क की अवहेलना कर ही आत्माको कर्ता तथा बंधन को वास्तविक मान बैठे हैं इस लिये न तो बंधन की व्याख्या कर पाते हैं और न मुक्ति की। उदाहरणार्थ जैन दर्शन को लिया जाय। इसके अनुसार बंधन की अवस्था में आत्मा पुद्गल-कण से आक्रांत हो जाता है। लेकिन भाई पुद्गल-कण तथा आत्मा दोनों विपरीत स्वभाव के हैं, यानि एक चेतन है तो दूसरा अचेतन तब पुद्गल-कण आत्मा को कैसे आक्रांत करता है, समझ में नहीं आता? फिर जैन-दर्शन में भी यह कहा गया है कि आत्मा जब पुद्गल-कणों से आक्रांत हो जाता है तब वह अनंत-चतुष्टय को बिलकुल खो नहीं देता बल्कि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक उसी प्रकार जिस तरह सूर्य मेघ से आच्छादित हो जाता है तब हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सुर्य की आलोकित करने

की शक्ति लुप्त हो गई है। जैन दर्शन में ऐसे कहे गये कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका तर्क भी उन्हें उसी निष्कर्ष पर ले जा रहा था जिसपर सांख्य तथा अद्वैत-वेदांत पहुंचे हैं लेकिन वे लोग तर्क की अवहेलना कर गलत निष्कर्ष पर पहुंच गये। अतः अब हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि कर्म का सिद्धांत आत्मा की स्वतंत्रता पर कभी भी कुठाराघात नहीं कर सकता है।

यथार्थ में कर्म-सिद्धांत को मानकर भारतीय दर्शन तथा धर्म एक शाश्वत् नैतिक व्यवस्था में विश्वास करता है। इसी शाश्वत् नैतिक व्यवस्था के सामान्य वातावरण में सभी भारतीय दर्शन तथा धर्म चाहे वे वैदिक हों या नहीं, चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक सांस लेते तथा विचरते हैं, वास्तवमें इसका एक मात्र अपवाद चार्वाक का भौतिकवादी दर्शन ही है।
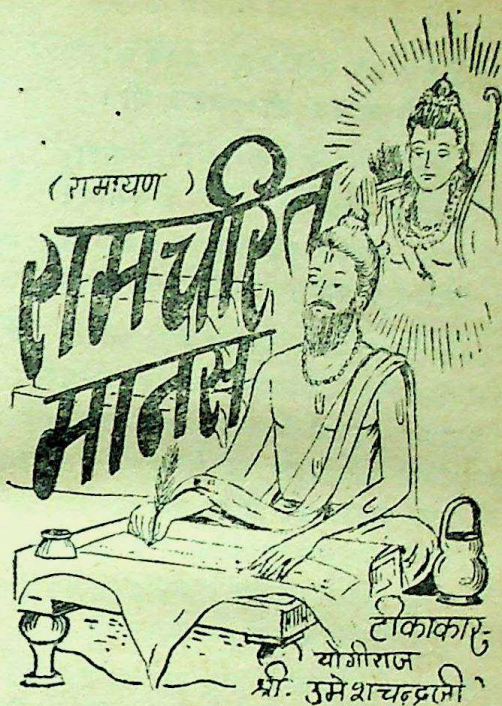
(गतांक से आगे)

मुक्त न भये हते भगवाना,
तीन जन्म द्विज वचन प्रमाना।
एक बार तिनके हित लागी,
धरेउ शरीर भक्त अनुरागी॥

यद्यपि भगवान् के हाथ से उनकी मृत्यु हुई थी, परन्तु फिर भी उन्हें आसुरी जन्म से मुक्ति नहीं मिली, क्यों कि

ब्राह्मणों ने तीन जन्म तक उन्हें असुर बनने का शाप दिया था और शाप-वाणी अमोघ थी—अटल थी।

कश्यप-अदिति तहां पितु-माता,
दशरथ-कौशल्या विख्याता।
एक कल्प इहिविधि अवतारा,
चरित पवित्र कीन संसारा॥

तब उनके पिता-माता कश्यप और अदिति थे, जो दशरथ और कौशल्या के नाम से विख्यात थे-पुकारे जाते थे। इस प्रकार एक कल्प में भगवान् ने अवतार लिया और अपने दिव्य चरित्र-कार्यकलाप से संसार को पवित्र किया है।

एक कल्प सुर देखि दुखारे,
समर जलंधरसन सब हारे।
शंभु कीन संग्राम अपारा,
दनुज महाबल मरै न मारा॥

एक अन्य कल्प में देवता अत्यन्त यन्त्राणा ग्रस्त हो गये, क्योंकि संग्राम में जालंधर दैत्य से वह सब पराभूत हो गये। शंकरजी ने भी उसके साथ घनघोर युद्ध किया, फिर भी वह उस अति बलवान् दानव का संहार करने में समर्थ न हुए।

परम सती असुराधिप नारी।
तेहि बल ताहि न जीत पुरारी॥

उस असुराधिप-राक्षसराज की पत्नी परम सती-साध्वी

थी, जिसके बल-प्रभाव से त्रिपुरारी-शिव भी उस असुर को जीत न सके।

छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन।
जब तेहि जानेउ मर्मसब, शाप कोप करि दीन॥

छल पूर्वक उसके सतीत्व-व्रत को भंग कर भगवान् ने देवताओं का कल्याण-कार्य सम्पन्न किया, किन्तु जब यह कपट-रहस्य उसकी समझ में आया कि मुझे धोखा दिया गया है, तब उसने कुपित होकर शाप दिया।

जब यह बात भलीभांति समझ में आ गई कि पत्नी के सतीत्व-बलसे जलन्धर अजित है—इसको जीत लेना असंभव है, तब भगवान् विष्णु साधु वेश धारण कर उसके द्वार पर गये। जलन्धर की पत्नी साधु से युद्ध-भूमि का समाचार पूछने लगी। इतने में उसके पति के शिर, हाथ, पैर आदि अवयव छिन्न-भिन्न रूप में उसके सामने आ गिरे। यह दुर्दशा देख कर वह रो पड़ी। साधु ने कहा कि तुम तो सती साध्वी हो। इन अंग-प्रत्यंगों को जोड़ दो, तुम्हारे सतीत्व के बल से तुम्हारा स्वामी जीवित हो उठेगा। जलन्धर की पत्नी वृन्दाने वैसा ही किया और उन सन्धित अंगों में अचानक प्राण का संचार हो गया। वृन्दा प्रेमपूर्वक उसके चरण दबाने लगी। इस प्रकार परपति का अंग-स्पर्श होते ही वृन्दा का पातिव्रत्य भंग हो गया और भगवान् शंकर ने उसका संहार कर दिया। जलन्धर के मरते ही साधु और जलन्धर का कृत्रिम रूप अन्तर्धान हो गया। जब वृन्दा को इस रहस्य का

ज्ञान हुआ, तब उसने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि आगामी जन्म में मेरा स्वामी तुम्हारी पत्नी का अपहरण करेगा और तुम स्त्री के वियोग में व्याकुल होगे, परन्तु वृन्दा को इसलिये धोखा दिया गया कि युद्ध के समय जलन्धर भी शिवका रूप बना कर पार्वती के पास गया था। परन्तु सर्वज्ञ भगवती पार्वती जी जलन्धर की पापपूर्ण प्रवंचना समझ गई और उन्होंने भगवान् विष्णु को प्रेरित किया कि वे जलन्धर की पत्नी के सतीत्व को भंग कर दें।

तासु शाप हरि कीन प्रमाना,
कौतुकनिधि कृपालु भगवाना।
तहां जलन्धर रावण भयऊ,
रणहति राम परम पद दयऊ॥

उस–वृन्दा के शाप को भगवान् ने प्रमाणित किया–कार्यान्वित किया, क्यों कि भगवान् तो परम कौतुकनिधि और कृपालु हैं। इसके बाद जलन्धर का जन्म रावण के रूप में हुआ, जिसे भगवान् राम ने संग्राम–भूमि में संहार कर परम पद प्रदान किया—मुक्त कर दिया।

एक जन्म कर कारण एहा,
जेहि लगि राम धरी नर देहा।
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी,
सुनि मुनि बरणी कविन घनेरी॥

राम के एक जन्म–अवतार का कारण यही है, जिससे प्रभु को मानव–शरीर धारण करना पड़ा। इस प्रकार भग-

वान् के प्रत्येक अवतार की कथा ऋषि-महर्षियों से सुनकर कवियों ने उसका वर्णन किया है।

नारद शाप दीन एक बारा,
कल्प एक तेहि लगि अवतारा।
गिरिजा चकित भई सुनि बानी,
नारद विष्णु-भक्त पुनि ज्ञानी॥

एक बार मुनिवर नारद ने भी भगवान् को शाप दिया, फलतः एक कल्प में उन्हें भूमण्डल पर अवतारित होना पड़ा, शंकर जी का यह कथन सुन गिरिजा आश्चर्य-चकित हो उठीं और कहने लगीं कि नारद तो भगवान् के परम भक्त और महान् ज्ञानी भी हैं।

कारण कौन शाप मुनि दीना,
का अपराध रमापति कीना।
यह प्रसंग मोहिं कहौ पुरारी,
मुनि मन मोह आचरज भारी॥

किस कारण को लेकर मुनि-नारद ने भगवान् को शाप दिया। रमापति-विष्णु ने ऐसा कौन-सा अपराध कर डाला था, जिसे नारद क्षमा नहीं कर सके। हे त्रिपुरारी! यह सारा प्रसंग मुझे सुनाओ। मुनिवर नारद के मन में मोह उत्पन्न होना एक अति आश्चर्य जनक बात है।

बोले विहंसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोय।
जब जेहि रघुपति करहिं जस, सो तस तेहि क्षण होय॥

तब भगवान् महेश्वर हंस पड़े और कहने लगे कि यहां अपने आपमें न तो कोई ज्ञानी है और न मूढ़ है। सब भगवान् की इच्छा पर नाच रहे हैं, वे जब जिसको जैसा चाहते हैं, वैसा उसे बना देते हैं। अर्थात् मानव महेश्वरेच्छाका अनुचर है।

कहौं राम-गुण-गाथा, भरद्वाज सादर सुनहु,
भवभंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद।

महर्षि याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं—हे भरद्वाज मैं राम की यशोगाथा बता रहा हूं, आप आदर पूर्वक सुनें। भगवान् राम सांसारिक आनन्द-वेदनाओं से परे रहने वाले हैं, अतः समग्र अहंकार और मान-मद से मुक्त होकर उनका भजन करें। यही कविवर तुलसी का भी सत्परामर्श है।

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि,
वह समीप सुरसरी सुहावनि।
आश्रम परम पुनीत सुहावा,
देखि देव ऋषि मन अति भावा॥

हिमालय पर्वत पर एक अति पवित्र गुफा थी, जिसके समीप ही पतितपावनी मन भावनी भगवती सुरसरी-गंगाजी की दिव्य धारा प्रवहमान थी। वहीं एक परम पवित्र और सुन्दर आश्रम भी था, जिसे देख कर देवर्षि नारद का मन आनन्दमग्न हो उठा।

निरखि शैल-शर-विपिन-विभागा,
भयो रमापति-पद-अनुरागा।

सुमिरत हरिहिं शापगति बांधी,
सहज विमल मन लागि समाधी।

पर्वत, नदी और वनका यह दिव्य क्षेत्र देखकर नारद जी के मनमें भगवद्-चरणों के प्रति भक्ति-अनुराग जाग उठा। भगवान का स्मरण करते हुए उन्होंने शाप की गति बांध दी--उसके प्रभाव को क्षीण कर दिया और निर्मल मन स्वाभाविक ज्ञान-समाधि में लीन हो गया। (कहा जाता है कि देवर्षि नारद को दक्ष प्रजा-पति ने शाप दिया था कि तुम दो घड़ी से अधिक कहीं एक स्थान पर ठहर नहीं सकोगे, किन्तु यह भगवत्कृपा से नारद पर उस शाप का प्रभाव उस समय नहीं हो सका।)

मुनिगति देखि सुरेश डेराना,
कामहिं बोलि कीन सनमाना।
सहित सहाय जाहु मम हेतु,
चला हरषि हिय जलचर केतू॥

मुनि की यह गति देख कर सुर-इन्द्र भयभीत हो उठा और उसने कामदेव को बुलाकर उसका बहुत आदर-मान किया और कहा—मेरा कार्य सिद्ध करने के लिये तुम शीघ्र ही जाओ और वह जलचर केतु कामदेव प्रसन्न चित्त चल पड़ा।

सुनासीर मनमहं अति त्रासा,
चहत देवऋषि मम पुर बासा॥

जे कामी लोलुप जग माही,
कुटिल काक इव सबहिं डेराहीं ॥

वह सुन सुरेन्द्र मन-ही-मन अत्यन्त त्रस्त और व्यस्त हो उठा। उसने विचार किया कि शायद देवर्षि नारद अमरावती पर-स्वर्ग भूमि पर अधिकार चाहते हैं और मुझे पद च्युत कर स्वयं इन्द्र-पद पर प्रतिष्ठित होना चाहते हैं। जगत् में जितने भी कामी और लोलुप लोग हैं, वे कुटिल काक-कौए की तरह सबसे डरते रहते हैं।

सूख हाड़ ले भाग शठ, श्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥

वह शठ-हीन प्रवृत्तिशील श्वान (कुत्ता) मृगराज (सिंह) को देख कर ले भागता है—इस भय से कि कहीं यह हमसे छीन न ले-इसी प्रकार सुरपति-इन्द्र भी अपना निर्लज्ज आचरण करते हैं।

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ,
निज माया वसन्त निरमयऊ।
कुसुमित विविध विटप बहुरंगा,
कूजहिं कोकिल, गुंजहिं भृंगा॥

उस आश्रम में—जहां नारद समाधिस्थ थे—जब मदन-कामदेव पहुंचा तब उसने अपनी मायावी शक्ति से बसन्त ऋतु का निर्माण किया। वहां के नाना प्रकार के विटप-वृक्ष बहुरंगी फूलों से सुरभित हो उठे। कोकिल मधुर स्वर से कूक सुनाने लगी, भंवरे गूंजने लगे।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी,
काम कृशानु बढ़ावनि हारी,
रंभादिक सुरनारि नवीना,
सकल असमशर कला प्रवीना ।

त्रिविध—शीतल, मन्द, सुगन्ध और सुहावना वायु प्रवाहित होने लगा, जो काम-कृशानु-कामाग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित करनेवाला था। रंभा आदि देवांगनाएं वहां उपस्थित थीं, जो नित्य नवीन असमशर-कला अर्थात् कामुक चेष्टाएँ प्रकट करने में सम्पूर्ण निपुण थीं।

करहिं गान बहु तान-तरंगा,
बहुविध क्रीडहि पाणि-पतंगा,
देखि सहाय मदन हरषाना,
कीन्हेसि पुनि प्रपञ्च विधिनाना ।

वे सब सुरांगनाएं नाना प्रकार की ताल-तरंगें छेड़कर गायन करने लगीं और हाथ-पैरों को हिला-हिलाकर नृत्य-क्रीड़ा करने लगीं। इस प्रकार का सहयोग प्राप्त कर मदन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और नानाविध प्रपंच रचने लगा।

काम-कला कछु मुनिहिं न व्यापी,
निज भय डरेउ मनोभव पापी,
सीम कि चापि सकै कोइ तासु,
बड़ रखवार रमापति जासू ।

कामदेव की विविध कलाओं और काम के इस विराट् आयोजन का जब देवर्षि नारद पर कुछ भी प्रभाव

न हुआ—मुनिवर की समाधि भंग न हुई, तब वह पापमय मनोभव (कामदेव) अत्यन्त भयत्रस्त हो उठा—उस पर देवर्षि की दिव्य शक्ति का आतंक छा गया। उस परम भाग्यवान् का कौन क्या बिगाड़ सकता है, जिसके संरक्षक स्वयं रमापति—अर्थात् भगवान् श्री नारायण सन्नद्ध हैं।

सहित सहाय सभीत अति, मानिहार मन मैन,
गहेसि जाय मुनिवर चरण, कहि सुठि आरत बैन।

अपने सहयोगियों सहित अत्यन्त आतंकित होकर और मन-ही-मन अपनी हार मानकर मैन (कामदेव) ने जाकर मुनिवर के चरण पकड़ लिये और भयकातर बचन कहकर उनकी अभ्यर्थना करने लगा।

भयौ न नारद-मन कछु रोषा,
कहि प्रिय बचन काम परितोषा,
नाय चरण शिर, आयसु पाई,
गयौ भवन तब सहित सहाई।

कामदेव की यह हरकत देखकर भी नारद के मन में तनिक भी रोष उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु अत्यन्त प्रेमपूर्ण वचन कह कर कामदेव को सान्त्वना दी—उसका भय दूर किया। तब वह कामदेव मुनिवर के चरणों पर नत-मस्तक होकर और उनकी आज्ञा पाकर अपने सभी सहायकों सहित घर लौट गया।

मुनि सुशीलता, आपनि करनी,
सुरपति-सभा जाय सब बरनी,

सुनि सब के मन अचरज आवा,
मुनिहि प्रशंसि, हरिहिं शिर नावा।

सुरपति—देवराज इन्द्र की सभामें पहुंचकर कामदेवने मुनिवर की सुशीलता—उनका उदार व्यवहार और अपने करनी—कर्मानुष्ठान का वर्णन किया, जिसे सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे और सबने मुनिवर के महान् सामर्थ्य की सराहना की और भगवान् को उद्देश्यकर शिर झुका दिया। भगवान् की अनुकम्पाका बल पाकर ही नारद काम-दमन में समर्थ हुये।

तब नारद गवने शिवपाहीं,
जीतेउ काम अहमिति मनमाहीं,
मार चरित शंकरहिं सुनावा,
अति प्रिय जानि महेश सिखावा।

इसके बाद नारद मुनि भगवान् शिव के पास पहुंचे। उनका मन काम-विजय के अहंकार से भ[रा] हुआ था। उन्होंने कामदेव की सारी कार्यवाही—समस्त आयोजन—जो कुछ उसने किया था—शंकरजीको बताया। आशुतोष शिव नारद के प्रति अति प्रेमभाव रखते थे, इसलिये उन्होंने नारद को भलीभांति समझाया कि—

बार-बार बिनवौं मुनि तोहीं
जिमि यह कथा सुनायौ मोहीं,
तिमि जनि हरिहिं सुनायहु कबहूं,
चलै प्रसंग, दुरायहु तबहूं।

हे मुनिवर! मैं बारंबार आपसे विनय-पूर्वक कहता हूं कि जैसे आपने यह सब कथा सुनाई है, उस तरह कभी भगवान् श्रीमन्नारायण के सामने नहीं कहने लगना—अर्थात् इस प्रकार का अहंकार उनके सामने नहीं प्रकट करना। यदि आपकी इस महान् शक्ति के सम्बन्ध में कभी प्रसंग उपस्थित होनेपर चर्चा होने लगे तो भी तुम उसे टालने के प्रयास करना।

> शंभुदीन उपदेश हित, नहिं नारदहिं सुहान,
> भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान।

यद्यपि शंकरजी ने नारदजी की भलाई के लिये ही उन्हें सदुपदेश दिया, किन्तु नारदजी को यह सब अच्छा नहीं लगा। (याज्ञवल्क्य कहते हैं) हे भरद्वाज आगे की कौतूहलोत्पादक घटना सुनो। भगवान् की इच्छा अत्यन्त बलवती है।

> राम कीन चाहहिं, सोइ होई,
> करै अन्यथा, अस नहिं कोई,
> शंभु वचन नहिं मुनि-मन-भाये,
> तब विरंचिके लोक सिधाये।

राम जो कुछ करना चाहते हैं, वह होकर ही रहता है। त्रिलोक में ऐसा कोई सामर्थ्यवान नहीं, जो भगवद्-इच्छा के विपरीत कार्य कर सके। परन्तु शिवजी की सद्भावनामयी

सलाह नारद को अच्छी नहीं लगी तब नारदजी विरञ्चि के लोक को चले गये।

एकबार करतल कर वीणा,
गावत हरिगुण-गान प्रवीणा,
क्षीरसिन्धु गवने मुनिनाथा,
जहं बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा।

एक बार अपनी वीणा बजाते और भगवान् का गुण-गान करते हुये मुनिनाथ नारदजी क्षीरसिन्धु पहुंचे, जहां भगवान् श्रीनिवास—लक्ष्मीपति—श्रुतिमाथ--वेदोंके प्रकाशक निवास करते हैं।

हरषि मिले उठि रमा-निकेता,
बैठे आसन मुनिहिं समेता,
बोले विहंसि चराचर राया,
बहुत दिनन कीन्हेउ मुनिदाया।

भगवान् रमानिकेत-विष्णु तत्काल उठे और नारदजी से भेंट पड़े, फिर मुनि-नारद-सहित आसन पर विराजमान हुये। बैठने के बाद चराचर जगत् के नियन्ता भगवान् ने हंसते हुये कहा—हे मुनिवर ! बहुत दिन के बाद आज आपने दया की है--पधारने की कृपा की है।

कामचरित नारद सब भाखे,
यद्यपि प्रथम वरजि शिव राखे,

अति प्रचंड रघुपति की माया,
जेहि न मोह अस को जग जाया ।

नारदजीने कामदेव की सब लीला भगवान्‌को कह सुनाई, यद्यपि शंकरजी ने पहले से ही ऐसा न करने की चेतावनी दे रखी थी । राम की माया अत्यन्त प्रचण्ड (उग्र) है । ऐसा कौन जगत् में उत्पन्न हुआ है, जो इस माया के मोह पाश में फंसकर 'अन्धकार विमूढ़ात्मा, नहीं बन गया ।

—क्रमशः

आत्म-विस्मृति

ले० डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'

इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा अजातशत्रु के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना है। युवावस्था में उसने अपने दुष्ट मित्र देवदत्त के भड़काने से अपने वृद्ध पिता मगधराज बिम्बिसार के विरुद्ध हत्या का षड्यन्त्र किया। बिम्बिसार को जब इसका पता लगा तो उसने पुत्र की वासनाओं को शान्त करने के लिये उसे चम्पा प्रदेश का शासक नियुक्त कर दिया। अजातशत्रु राजा बनकर देवदत्त के साथ प्रजा को लूटने लगा। जनता में हाहाकार मच गया। लोग रोते-चिल्लाते बिम्बिसार के पास पहुँचे। बिम्बिसार ने यह सोचकर कि संभवतः बड़ा राज्य पाकर अजातशत्रु को लूट-पाट करने की आवश्यकता न पड़ेगी, उसे अपनी राजधानी राजगृह के अतिरिक्त सम्पूर्ण मगध राज्य का स्वामी बना दिया। इतने पर भी अजातशत्रु का अत्याचार कम नहीं हुआ। तब पुत्र-मोही महाराजा ने उसे राजगृह भी सौंप दिया, परन्तु राज-कोष पर अपना ही अधिकार रक्खा।

इस पर भी अजातशत्रु को सन्तोष नहीं हुआ। देवदत्त ने उसे सुझाया कि जिसके हाथ में राज-कोष रहता है, वास्तव में, वही राज्य का सर्व-समर्थ स्वामी होता है--अतएव राज्य-लक्ष्मी को अपने हाथ में रखना चाहिये। बिम्बिसार

ने देखा कि अर्थ के पीछे अनर्थ होनेवाला है, इसलिये उसने अपना सर्वस्व अजातशत्रु को देकर उसे भविष्य में देवदत्त से दूर रहने को कहा। अजातशत्रु ने अपना मार्ग निष्कंटक बनाने के लिये पूर्ण अधिकार पाकर अपने वृद्ध पिता को भूखों मरने के लिये बन्दी-गृह में डलवा दिया। उसका अन्न-पानी बन्द कर दिया। एकमात्र उसकी महारानी वैदेही उससे दिन में केवल एक बार मिल सकती थी।

वैदेही प्रतिदिन अपने स्वामी से मिलती और उसको एक कटोरे में चुपके से कुछ भोजन-सामग्री और पानी दे जाती। अजातशत्रु को इसका पता चला तो उसने अपनी माता को बुलाकर डराया-धमकाया और सिपाहियों का कठोर आदेश दिया कि किसी भी प्रकार का आहार बिम्बिसार के पास न जाने पाये। अब वैदेही ने दूसरी युक्ति से काम लिया। प्रतिदिन पति के पास जाने के पूर्व वह अपने शरीर में एक पोषक चूर्ण मलकर ले जाती और गहनों के भीतर पानी। इस प्रकार उसने बन्दी महाराजा को कुछ दिन और जीवित रक्खा। एक दिन यह रहस्य भी खुल गया। राजाज्ञा से उसका मिलना बन्द हो गया। जीर्ण शीर्ण बिम्बिसार भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरने के लिये एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। इस कोठरी की एक खिड़की से वह प्रतिदिन गृद्धकूट पर टिके हुये भगवान् बुद्ध के दर्शन करके धैर्य और शान्ति प्राप्त कर लेता था। अजातशत्रु को जब इसका पता चला तो उसने उस खिड़की को भी बन्द करवा दिया।

उन्हीं दिनों अजातशत्रु के बच्चे की उँगली में एक फोड़ा निकल आया। एक दिन अजातशत्रु बच्चे को कष्ट से बहुत व्याकुल देखकर उसकी उस उँगली को मुँह में लेकर धीरे २ चूसने लगा। इससे फोड़ा फूट गया और उसकी व्यथा शान्त हो गई। वैदेही यह सब देख रही थी। उसने अजातशत्रु से कहा--एक दिन जब तुम भी इतने ही बड़े थे तो तुम्हारी उँगली में भी ऐसा ही फोड़ा निकल आया था। उस समय तुम्हारे स्नेही पिता ने भी ऐसा ही किया था।

इस मर्मस्पर्शी वाक्य से अजातशत्रु की सोई हुई ममता जाग गई, उसके हृदय की सद्भावनाएं एकसाथ उमड़ पड़ीं। कोई उसके अन्तस्तल में पुकार-पुकार कर कहने लगा— जिसने तुम्हें जीवन दिया, अपना सर्वस्व दिया, अपने से भी अधिक माना, अपने हृदय से लगाया, उसी उपकारी के साथ तुम अपकार कर रहे हो, अपने बनानेवाले को ही बिगाड़ रहे हो, हृदय की एक-एक धड़कन उसको धिक्कारने लगी। उसे अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया। जिसे वह निर्दयतापूर्वक नष्ट करना चाहता था, उसी की प्राण-रक्षा के लिये व्याकुल होकर वह बन्दीगृह की ओर यह चिल्लाता हुआ दौड़ा— ओह, मेरे पिता कहां हैं, कोई यदि आज यह बता दे कि वह अभीतक जीवित हैं तो मैं उसे अपना सारा राज्य दे दूंगा। पिता-पिता पुकारता हुआ वह अपराधी बन्दीगृह के द्वारपर पहुंचा। जल्दी-जल्दी ताले खोले जाने लगे।

इधर बिम्बिसार मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। बाहर

हल्ला-गुल्ला सुनकर उसे शंका हुई कि संभवत: अजातशत्रु ने उसके लिये किसी नई यातना की व्यवस्था की है। भारी कष्ट की आशंका से वह दुर्बल जीव समय से पहले ही मर गया। अजातशत्रु ने आकर अपने पाप का प्रत्यक्ष परिणाम देखा। पिता मुक्त होकर परम पिता के पास जा चुका था। अजातशत्रु का हृदय जीते-जी पश्चात्ताप की चिता में जलने लगा। पिता से उसे जो सुख मिला था, वही उसके दुख का कारण बन गया। राजगृह उसके लिये प्रेत-कानन हो गया। दिशायें उसे खाने दौड़ती थीं। मानसिक व्यथा से मुक्ति पाने के लिये उसने राजधानी बदल दी, परन्तु कहीं भी वह शान्ति नहीं पा सका।

मनुष्य होकर भी अजातशत्रु ने मनुष्योचित व्यवहार क्यों नहीं किया? इसका रहस्य एक पौराणिक कथा से भलीभांति स्पष्ट हो जायगा, इसलिये उसे हम यहां संक्षेप में देते हैं।

एकबार त्रिलोक-विख्यात भ्रमण-प्रिय देवर्षि नारद अपने शिष्य तुम्बुरु गन्धर्व के साथ पृथ्वी-पर्यटन के लिये निकले। घूमते-घामते दोनों एक नगर के किसी बनिये की दूकान के पास जाकर खड़े हो गये। सामने से एक कसाई बकरों का झुंड लिये आ रहा था। उसमें से एक बकरा लपक कर बनिये की दूकान में घुस गया और कुछ खाने लगा। बनिया क्रोध से तिलमिला उठा और उसकी गर्दन पकड़कर उसे

कसाई को देता हुआ बोला—देखो जी, मैं आज इसी दुष्ट का मांस खाऊंगा, इसे तुम आज ही मार कर इसका मांस मेरे हाथ बेच जाना।

नारद इस दृश्य को देखकर हंसने लगे। तुम्बुरु ने गुरुजी से अकारण हंसने का कारण पूछा। नारदने कहा-आज यह बनिया जिस जीव का मांस खाकर अपने क्रोध को शान्त करना चाहता है, वह पूर्व जन्म में इसका पिता था। यह उसीकी खोली हुई दूकान है। यह उसीका प्राणप्रिय पुत्र है जिसे उसने अनेक व्रत-अनुष्ठान के बाद अपने हृदय का सार देकर पाया था और बड़ी-बड़ी शुभ कामनाओं के साथ पाल-पोसकर बड़ा किया था। पूर्ण वासना से प्रेरित होकर वह अपनी ही वस्तु का उपभोग करना चाहता है, लेकिन उसका बेटा उसे मुट्ठी भर अन्न भी नहीं लेने देता और उसका प्राण-ग्राहक बन गया है। यदि उसे यह भेद ज्ञात होता तो वह ऐसा कठोर कर्म कदापि न करता। मुझे अहंकारी मनुष्य के अज्ञान पर हंसी आ रही है।

इस कथा के भाव को ग्रहण कीजिए। लोग जब अपने को किसी भी कारण से भूल जाते हैं तब वे ऐसे अस्वाभाविक कर्म करने लगते हैं जिन्हें हम अमानुषिकता या नीचता अथवा पशुता कहते हैं। अनर्थ का कारण है-आत्म विस्मृति। अजातशत्रु अपने पिता के साथ दुर्व्यवहार क्यों कर रहा था? क्योंकि वह भूल गया था कि मैं मनुष्य पहले हूँ और राजा या और कुछ बाद को। उसकी महत्वाकांक्षा, अधिकार-

लोलुपता ने उसे अन्धा बना दिया था। वह न अपने आप को पहचानता था, न अपने बाप को। ऐसी दशा में वह मनुष्योचित आचरण कैसे करता? राज्य वैभव के आगे उसे अपनी मनुष्यता का ध्यान ही कहां था? जिस समय उसे आत्म-ज्ञान हुआ, उसकी मनुष्यता भी जग गई। उसी समय उसके हृदय में अपने पिता के प्रति आत्मीयता भी उत्पन्न हुई और उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान भी स्वतः हो गया।

वास्तव में, अपने को--अपने स्वभाव-धर्म को भूलकर ही लोग पाशविक या पैशाचिक कर्म करते हैं। क्रोध, अहंकार, उन्माद या किसी वासना की प्रबलता तथा मद की तीव्रता में आत्म-विस्मरण ही तो होता है जिसके कारण मनुष्य उच्छृं-खल हो जाता है। भय में जब किसी के होश-हवास उड़ जाते हैं, तब वह भीगी बिल्ली बन जाता है। घोर दरिद्रता में जब लोग अपनापन खोकर टुकड़ों के लिये लालायित होते हैं, तो वे कुत्तों-जैसा आचरण करते हैं--"भिक्षुको भिक्षुकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते।' इसी प्रकार कभी लोग गधे की भांति मूढ़ हो जाते हैं, कभी भेड़िये की तरह क्रूर और कभी शृगाल-जैसे भीरु। उल्लू तो कितने ही बनते और बनाये जाते हैं। उस समय उनमें मनुष्यत्व कहां रहता है! शरीर से मनुष्य होकर भी वे स्वभाव-चरित्र से मनुष्य नहीं प्रतीत होते। वे पशु की भांति या उससे भी अधिक निरंकुश एवं पतित हो जाते हैं। स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थान पर कहा है--'मनुष्य जिस समय पशु-तुल्य आचरण करताहै, उस समय पशुओं से भी गिर जाता है।' सचमुच जब लोगों को अपने मनुष्यत्व का ज्ञान नहीं रहता, तब वे

पशुओं से भी अधिक नीच हो जाते हैं। जब ज्ञान समाकुल हो जाता है, तब बुद्धि-पूर्ण कृत्य नहीं हो सकते--'समाकुलेषु ज्ञानेषु न बुद्धि कृतमेव तत्' महाभारत। जो अपने को नहीं पहचानेगा, वह दूसरों को कैसे पहचानेगा और उनके साथ सद्व्यवहार कैसे करेगा? भगवान् कृष्ण ने सत्य ही कहा है कि जो अपने आपको नहीं पहचानता वह स्वयं अपने साथ शत्रु का व्यवहार करता है। 'अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्'—गीता।

आजकल साधारणतया लोग मनुष्यता की ओर ध्यान नहीं देते अथवा यह कहिये कि जीवन को मानवीय दृष्टिकोण से नहीं देखते। आपको देशभक्त, सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट मिल जायेंगे, वकील, डाक्टर, पदाधिकारी मिल जायेंगे, लेकिन सच्चे मनुष्य कम मिलेंगे। अर्थात् ऐसे लोग कम मिलेंगे जो अपनी मनुष्यता का ध्यान रखते हों और उसको महत्त्व भी देते हों। देश, जाति, सम्प्रदाय, और व्यवसाय आदि के अनुसार ही प्रायः लोग अपना परिचय देते हैं और उन्हीं को स्मरण रखते हैं। देश-प्रेम, जातिप्रेम, जीविका और राजनीतिक समस्याओं के आगे जीवन को कौन पूछता है? देशभक्त होने का जो महत्त्व है वह मातृ-पितृ-भक्त या ईश्वर--भक्त होने का नहीं है। लोग इस बात को भूलते जा रहे हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति सभी सम्प्रदायों, राजनीतिक दलों और व्यवसायों से पहले हुई है। उन्हें अपनी संस्थाओं के उद्देश्य एवं नियमोंका ध्यान रहता है और वे बड़ी तत्परता के साथ उसका पालन भी करते हैं, परन्तु जीवन के उद्देश्य और उसकी नियमावली का पता नहीं रहता। राजनीतिक

और आर्थिक सिद्धान्तों को तो लोग समझते-बूझते और अपनाते हैं, लेकिन जीवन के मौलिक सिद्धान्तों को जानने की भी चेष्टा नहीं करते, मानना तो दूर रहा।

इसी बात को दूसरी तरह से समझिये। एक व्यक्ति वकालत पास करता है। इसके बाद उसका कर्त्तव्य इतना ही है कि जिससे फीस मिले उसकी पैरवी करे। दूसरा व्यक्ति डाक्टर हो जाता है। उसका काम इतना ही है कि जिससे फीस मिले उसकी चिकित्सा कर दे। यदि कोई कष्ट-पीड़ित व्यक्ति फीस नहीं दे सकता तो उसके लिये डाक्टर के चित्त में मानवोचित सहानुभूति नहीं होगी। किसी अन्याय-पीड़ित को देखकर वकील स्वय न्याय के लिये लड़ने को तैयार नहीं होगा। यही हाल भिन्न-भिन्न श्रेणी, सम्प्रदाय और वर्ग के लोगों का है। एक प्रकार की कृत्रिम सभ्यता चल पड़ी है, जिसमें मनुष्य राष्ट्र या समाज के ढांचे का एक पुर्जा माना गया है। यन्त्र-युग का मनुष्य स्वयं एक यंत्र बन गया है। उसे एक ढर्रे पर आंख मूंदकर अपना ही काम करना चाहिये। बहुसंख्यक शिक्षितों में यही भावना फैली हुई है। वे अपने को काम करने की एक मशीन समझते हैं और मशीन की तरह ही काम करते हैं। काम के आगे उन्हें मनुष्यता का ध्यान स्वप्न में भी नहीं आता। एक दूसरे के प्रति उन्हें इसका ही अनुभव होता है कि "पास बैठे हैं, मगर दूर नजर आते हैं।" यह कहना चाहिये कि इस प्रकार के लोगों का हृदय पत्थर का ही हो जाता है। समय पर उनकी मनुष्यता नहीं जगती, उनकी मानवीय सद्वृत्तियां निष्क्रिय हो जाती हैं। यही तो आत्म-विस्मृति है।

नारी-जीवन की मार्मिक कहानी

नायलॉन की साड़ी

लेखिका शान्ता मानावत

लता भाभी को नई-नई साड़ी खरीदने का अत्यधिक चाव था। उनकी शादी को ५ वर्ष बीत चुके थे। विगत वर्षों में कोई भी महिना ऐसा नहीं बीता जिसमें भाभी ने नई साड़ी, उससे मेच करता हुआ ब्लाउज का कपड़ा, वैसी रीबन और वैसी चप्पल न खरीदी हो। इस रंग के साथ यह रंग मेच करेगा, इसकी उन्हें बहुत अच्छी परख थी। इसी कारण प्रभा की चाची जब कभी साड़ियां खरीदने जाती तो लता भाभी को अवश्य साथ ले जाती।

अप्रैल की तीन तारीख थी। लता भाभी के पतिदेव को उनका वेतन मिल-चुका था। वे कलक्टरी आफिस में साधारण क्लर्क थे। उनको अपनी श्रीमती जी का साड़ियों का यह खर्चा असह्य प्रतीत होता पर वे बेचारे कहते किससे ? मन मसोस कर रह जाते।

एक बार क्लर्क साहब को किसी मित्र ने सपत्नीक दावत में निमन्त्रित किया। लता भाभी अपनी पूरी सज धज के साथ वहां पहुंची। उसने रेशम की लाल साड़ी, उसीसे मेच करता हुआ ब्लाउज़ वैसी ही चूड़ियां और वैसे ही चप्पल

पहने । उसका सौन्दर्य सेम की लालिमा की तरह अपने में न समा सकने के कारण बाहर उभर रहा था ।

लता और महेश ज्यों ही वहां पहुंचे, देखते हैं कि रमेश और दिनेश की पत्नियां नायलॉन की साड़ी और नायलॉन का ब्लाउज पहने हुए हैं । उनके किनारों पर नये डिजाइन के सुन्दर फूल पत्ते चित्रित थे । उन फूल पत्तों के बीच चौकड़ी भरते हुए हिरन सबको विस्मय-विमुग्ध कर रहे थे ।

साड़ियों की सुंदरता देख महेश बाबु का मन वहां नहीं लगा । वह मन ही मन सोचने लगा-यदि लता के भी ऐसी साड़ी होती तो वह उसमें कितनी सुन्दर लगती !" महेश भाव विभोर हो उन साड़ियों की तरफ ही टकटकी लगा कर देखता रहा है । उसका मन न चाय पीने में लगा न कुछ खाने में ।

पार्टी समाप्त होने पर सभी लोगों ने अपने अपने घर का रास्ता लिया । महेश और लता भी घर की ओर मुड़े पर महेश की आंखें तो लता को नायलॉन की साड़ी के बीच लिपटी देखने के लिये व्याकुल हो रही थीं ।

महेश ने लता से कहा—"लता ! तुमने इस महिने में साड़ी नहीं खरीदी ? घर न चल कर आज तुम बाजार की तरफ ही चलो । मैं तुम्हें भी वैसी नायलॉन की साड़ी जैसी कल दिनेश की मिसेज ने पहन रखी थी वैसी दिलाऊंगा । नायलॉन की साड़ी में कल रेखा और रेणु कितनी सुन्दर लग रही थी । उस साड़ी के बीच उनका यौवन किस तरह झांक

झांक कर सभी मित्रों का मन लुभा रहा था। लता! काश तुम्हारे भी ऐसी साड़ी होती तो तुम कितनी सुन्दर........" महेश उस सुन्दरता की स्मृति करके फिर भाव विभोर हो गया।

लता प्रियतम की यह बात सुन कर एक दम स्तम्भित रह गई। उसे नायलॉन की साड़ी कदापि पसन्द नहीं थी। हां उसे नया कपड़ा पहनना अवश्य अच्छा लगता है। पर वह भी लज्जा रखने के लिये, शरीर का नग्न प्रदर्शन करने के लिये नहीं। ज्यों ही रेखा और रेणु का नायलॉन की साड़ी का दृश्य उसकी आंखों के सामने आया वह सहसा चिल्ला पड़ी नहीं। स्वामी! नहीं, नहीं, मैं नायलॉन......नहीं।' बस आगे वह कुछ बोलना चाहती थी पर बोल नहीं सकी।

इस पर महेश ने लता को डांटते हुए कहा:—"तुमने एम. ए. पास करके तो झख ही मारी है। तुम तो बाबा आदम से भी पुराने जमाने की हो, जब देखो तब यही कहती रहती हो कि मुझे नायलान बिल्कुल ही पसन्द नहीं।"

बातों ही बातों में लता और महेश क्लाथ मार्केट में पहुंच चुके थे। महेश ने ज्यों ही सिर ऊंचा किया सामने मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था। "न्यू फैन्सी नायलान साड़ी स्टोर" अब क्या था? महेश दुकान में पहुंचा। दुकानदार ने एक से एक बढ़िया साड़ियां दिखानी शुरू कीं--

लता ज्यों २ नई साड़ियों को देखती त्यों २ उसके हृदय

पटल पर विभिन्न स्मृतियां अंकित हो जातीं--"हां ! एक माह पूर्व प्रभा की बड़ी बहन भी चाय बनाते समय नायलान के दुपट्टे से जल गई थी।"

"हां ! पिछली दीवाली को ही मेरी भतीजी आरती नायलान के फ्राक से फुलझड़ी संजोते समय दीपक से......।' कहीं यह साड़ी भी कभी मुझे।" इतने में महेश ने कहा--देखो लता ! यह गुलाबी रंग की साड़ी जिस पर हरे रंग के बने बेल बूटे, दीखने में सुन्दर लग रहे हैं। तुम्हारे गौर वर्ण पर यह साड़ी बहुत खिलेगी।' लता की इच्छा तो साड़ी को हाथ में पकड़ना तो दूर उसे देखने तक की नहीं थी। पर बेचारी आखिर कहां तक प्रियतम की इच्छा का तिरस्कार करती?

महेश ने साड़ी पसन्द करली। दूकानदार से पूछा 'इसकी क्या कीमत है?' दूकानदार बोला--बाबू जी अधिक नहीं सिर्फ ७५ रु.' महेश के पास इतने पैसे उस समय नहीं थे। वह उधार ही उसे लेकर घर आ गया।

महेश के दिल में उस साड़ी को देख अत्यन्त प्रसन्नता हो रही थी। उसने लता से कहा--"आज खाना जल्दी बना लेना। अपन पिक्चर चलेंगे।' लता ने मना करते हुए कहा "आज आप को हो क्या रहा है? दोपहर को दो बजे घरसे निकले थे, सन्ध्या की ५ बजे घर आये हैं। बच्चे तीन घण्टे से अपने लिये तड़फ रहे हैं। और अब घर में पैर रखा है कि फिर पिक्चर। मैं नहीं चलूंगी।"

महेश मान गया पर दूसरे दिन फिर लता से पिक्चर के लिये अनुरोध करने लगा। लता से अधिक मना नहीं किया गया। नारी हृदय मचलता भी शीघ्र है तो मानता भी शीघ्र।

उसने जल्दी २ खाना बनाया और बच्चों से खाना खाने के लिये कहा--"छोटा मुन्ना जो दो साल का था सहसा बोल पड़ा--"नहीं मम्मी नहीं ठायेंगे। आप पिक्चर जायेंगे टमी टायेंगे। आप हमले लिये आम लाना, अमूद लाना।"

लता अपने नन्हें मुन्ने की मधुर तोतली बोली सुनने में इतनी व्यस्त हो गई कि उसे समय का बिल्कुल ध्यान नहीं रहा।

उस समय ६ बजकर २५ मिनट हो गये थे। अभी उसे पिक्चर जाने के लिये तैयार होना था। वह जल्दी २ में सूती साड़ी ही पहनने लगी इस पर महेश उससे नाराज हो गया। आखिर लता को उसका कहना मानना पड़ा।

जैसे तैसे 'पिक्चर पैलेस' पहुंचे। पिक्चर को शुरू हुए भी १५ मिनट हो चुके थे। पिक्चर था 'ताज महल' महेश को पिक्चर देखने में बहुत आनन्द आ रहा था। उसमें यह बताया जा रहा था कि मुमताज बेगम शाहजहां को कितना चाहती थी। महेश रुक रुक कर नायलान की साड़ी के बीच लिपटी लता के रूप का पान करता जा रहा था पर लता को पिक्चर में कुछ भी इन्ट्रेस्ट नहीं आ रहा था। आज वह अपमें भूखे नासमझ तीन बच्चों को घर छोड़ कर महेश का

मन रखने जबरदस्ती यहां आई थी। उसकी आंखों के सामने तो रह रह कर बच्चों की तस्वीर आ रही थी और वह कह रही थी 'मम्मी बहुत देल हो गई भूख लग लही है ठाना दो'

जैसे तैसे ९ बजे, पिक्चर समाप्त हुआ। लता और महेश घर आये। महेश की दृष्टि टेबल पर रखे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पर पड़ी। वह उसे पढ़ने लगा। लता ने बच्चों की सुध ली, बच्चे जोर जोर से रो-रो कर कहने लगे 'मम्मी भूख लगी' इतने में छोटा पप्पू बोला—'मम्मी तुम मेले लिये आम नहीं लाई।' लताने प्यार से बच्चों को सहलाया और जल्दी से रसोई घर की तरफ खाना गरम करने को गई।

स्टोव में पम्प लगाया पर तेल न निकला। शायद अब उसमें तेल समाप्त हो गया था। लता ने जल्दी से डिब्बे में से एक बोतल तेल निकाला और स्टोव में डाला। जल्दी से माचिस लगाई। अब की बार भी स्टोव नहीं जला क्यों कि बर्नर में कुछ कचरा आ गया था। लता ने शीघ्र ही बर्नर में पिन डाला। पिन डालते ही स्टोव भभका। बस फिर क्या था? नायलान की साड़ी ने आग पकड़ ली। लता चिल्लाई 'बचाओ! बचाओ'

'बचाओ का शब्द सुन महेश चकित हो गया। उसने बरामदे में आकर देखा कौन है? कोई दिखाई नहीं दिया। इस पर कमरे से होकर रसोई की तरफ लता से पूछने गया कि यह आवाज? सामने लता का शरीर चिता की भांति धधका जा रहा था। वह आगे कुछ भी बोल न सका। उसने

आव देखा न ताव। लता के शरीर से कपड़े छुड़ाने का बहुतेरा प्रयत्न किया पर कुछ भी हाथ न लगा। लता का कंचन सा शरीर तो जल कर कोयला बन ही गया था। पर इस प्रयत्न में महेश के हाथ पैर भी जल गये थे। वह मर्मान्तक पीड़ा से बेहोश होकर गिर पड़ा।

उसके पड़ौसी सुरेश को जब यह घटना ज्ञात हुई तो उसने फोन कर एम्बूलैंस मंगवाई, और दोनों पति-पत्नी को अस्पताल में भर्ती करा दिये।

अस्पताल में दोनों के बेडिंग अलग-अलग वार्ड में थे। महेश को जब कभी होश आता वह 'लता-लता' चिल्लाता सुरेश-'वह ठीक है कह कर उसे आश्वस्थ करता। डाक्टर ने सख्त आदेश दे दिया था कि दोनों पति-पत्नी आपस में मिलने न पावें।

लता के शरीर पर जगह २ पर घाव पड़ गये थे। उसका कमल सा मुखड़ा फटा हुआ ज्वालामुखी बन गया था। उसकी कदली सी जंघाएं सड़ा बांस बन चुकी थी। उसने पिक्चर जाने से पूर्व भोजन तक नहीं किया था। जब कभी वह करवट बदलती 'मैं भूखी हूं' की हल्की सी आवाज करती। कभी आंखें खोल कर कहती 'मेरे मुन्ने को आम ले जा कर दे आओ, उसे आम अच्छा लगता है।' फिर सो जाती।

डाक्टर दोनों के वार्ड में बारी-बारी से चक्कर काट रहा था। घण्टा भर इसी तरह बीता। इसी बीच नर्स ने सूचना दी। 'लता ने दम तोड़ दिया। उसके अंतिम शब्द थे 'नायलान की साड़ी।' डाक्टर ने कड़ाई से आदेश दिया---महेश के कान में यह खबर न पहुँचे।'

(गतांग से आगे)

जल को शुद्ध करने के यंत्र होते हैं। वैसे इसे कोयले द्वारा भी साफ किया जाता है।

उबालकर बालू एवं कोयले द्वारा शुद्ध किया हुआ जल बीमारी पैदा करनेवाले कीटाणुओं से विशेष रक्षा करता है। शुद्ध जल रंगरहित, स्वादरहित, स्थिर अवस्था में गर्मी एवं शीतऋतु में एक ही तापांश में होता है। इसमें कुछ अंश कार्बोनिक एसिड का होता है। [प्लेटन]

मनुष्य के शरीर में ७० प्रतिशत जल होता है जिसका तापांश ९८°ः है। शरीर से पानी ३० प्रतिशत चर्म द्वारा, २० प्रतिशत फेफड़ों से, तथा ५० प्रतिशत मूत्र के रूप में प्रतिदिन निकल जाता है जिसकी पूर्ति हम भोजन एवं पानी द्वारा नित्यप्रति-करते हैं।

जल और स्वास्थ्य

सलाइवा (लार) का मुख में प्राकृतिक रूप में वहन एवं प्यास की कमी स्वास्थ्य का चिह्न है। शक्कर का प्रयोग, शक्कर की मिठाइयाँ, सीरप, मुरब्बा, नमक का तथा उससे बने, पापड़, चटनी इत्यादि उष्ण पदार्थ, कालीमिर्च, मसाला, राई इत्यादि उत्तेजक पेय जैसे चाय, काफी, शराब, नशीले पदार्थ जैसे तम्बाकू, सुपारी, अफीम आदि, उष्ण तले पदार्थ आदि ही स्वस्थ मनुष्य की तृष्णा के साधन हैं। ज्वर एवं मधुमेह आदि भी प्यास के कारण हैं। प्यास बुझाने के लिए मान्य एवं प्राकृतिक साधन हैं फलों के रस नारियल का पानी, गन्ना चूसना आदि। फलों के रस में जो लवण होता है वह अणुओं में विभक्त हो जाता है। जबकि अप्राकृतिक पेय जैसे सोडा लेमन, चाय, काफी, शरबत आदि लाभ की जगह हानि अधिक पहुँचाते हैं। जलचिकित्सकों का ऐसा अनुभव है कि शुद्ध जल रासायनिक, तत्त्वरहित होता है। फलों के रसाभाव में-'फिल्टर्ड' जल का प्रयोग ठीक है। भारी जल सदा उबाल एवं छानकर पीना चाहिए।

डा. वी. एम. कुलकर्णी का अनुभव है कि यदि तली वस्तुयें, मसाले, शक्कर एवं खनिज लवण न प्रयोग किये जायँ तो पानी की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती है। सामयिक फल, नारियल का पानी, गन्ना आदि प्यास की आवश्यकता पूरी करते हैं ऐसे समय में लार ही जीभ, गला तथा संपूर्ण आंत्र नलिका को गीला रखता है। धूम्रपान,

नमक एवं शक्कर से नकली प्यास पैदा होती है।

डा. रुडक का कथन है कि शुद्ध जल के समान संसार में कोई पेय नहीं है, १५४ पौंड वजन के व्यक्ति में १११ पौंड पानी होता है। इससे शुद्ध जल की आवश्यकताका अनुभव लगाया जा सकता है। घर के उपयोग के लिए विधिवत् छना हुआ पानी ही होना चाहिए। सोते, नदी, समुद्र तथा उथले कुयें के पानी में कई प्रकार के पदार्थ मिले होते हैं जिससे वह पीने योग्य नहीं होता। शुद्ध पानी गहरे कुयें एवं ट्यूब वेल से प्राप्त होता है।

कई बार हल्के ज्वर में तथा हैजा में शीतल जल की अपेक्षा साधारण उष्ण जल प्यास को घटाता है। उष्ण जल का एनीमा भी प्यास रोकने में सहायक-बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारी एवं अशुद्ध जल यकृत एवं गुर्दे को प्रभावित करता है। पीने का जल सदा शुद्ध एवं कोमल होना चाहिए। सोडा, लेमन, जिंजर एवं सलाइन, सल्फर आदि की बनी दवायें— स्वस्थ एवं अस्वस्थ दोनों के लिए हानिकर हैं। जो जल चिकित्सक अपने रोगियों को ऐसी वस्तुयें व्यवहार करने को दे देते हैं यह उनकी अज्ञानता है। [आर. टी. ट्राल एम. डी.

ज्वर, मुटापा, कब्ज, जननेन्द्रिय-रोग, चर्म की पुरानी निष्क्रियता, आँतों की खराबी, अल्कोहल एवं अपच के कारण यकृत की खराबी आदि में पानी पीना अमूल्य है कब्ज में प्रातः एवं सोते समय पानी पीना चाहिए। ज्वर में प्रति घंटे प्याला भर २ पानी पीना एवं अन्य अवस्था में जब

प्यास लगे पीना आवश्यक है। [जे. एच. केलाग एम. डी.]

आयुर्वेद ग्रंथ में भी निम्न श्लोक जल की उपयोगिता बताते हैं:—

पानीयं प्राणिनां प्राणा स्तदायत्तं हि जीवितम्।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु वारि देयं पिपासवे ॥
अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान् धारयते चिरम्।
तोयाभावे पिपासार्तः क्षणात् प्राणैर्विमुच्यते ॥

अर्थः—पानी प्राणीमात्र का जीवन है। उनका जीवन पानी के आधार पर ही है। प्यास में पानी पिलाना आवश्यक है चाहे किसी भी दशा में हो। भोजन बिना दीर्घ समय तक रह सकते हैं। परन्तु प्यास लगने पर एक क्षण बिताना भी कठिन है।

दिवा सुर्यांशुसंतप्तं रात्रौ चंद्रांशु शीतलम्।
अंशूदकमिति ख्यातमायुरारोग्य दायकम् ॥

अर्थः—जो जल दिन में सूर्य की गर्मी से तप्त होता है और रात में चंद्रमा द्वारा शीतलता पाता है, ऐसा जल जीवनदाता एवं स्वास्थ्यदाता होता है। इसे अंशूदक कहते हैं।

वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत।
तदेव मिष्टं कफकृद्वापित्त हरं भवेत ॥

अर्थः—कुयें का पानी क्षारयुक्त होने पर पित्त प्रधान होकर कफ-वात रोग दूर करता है एवं मीठा होनेपर कफ प्रधान होकर वात-पित्त रोगों को दूर करता है।

बहुवृक्षलतापर्ण छाया युक्तं रोचकम्।
अव्ययं विरसंचैव कृमि शैवाल संयुतम्॥
रोगोदकं विजानीयात्करोति विषमान् गदान्।
गुल्मप्लीहार्श पांडुंच कण्डू शूलादिकं तथा॥

अर्थः—जिस जल पर कई वृक्षों एवं लताओं की छाया हो, निःस्वाद हो, जो उपयोग करने की अवस्था में न हो बुरे स्वाद का, कीटाणुयुक्त, घासयुक्त हो वह रोग पैदा करनेवाला होता है। ऐसे जल से प्लीहा के रोग, बवासीर, रक्ताल्पता, वायुगोला एवं चर्म रोग की उत्पत्ति होती है।

विष्मूत्र तृणनीलिका विषयुतं सतं घनं फेनिलम्।
दन्तग्राह्यमनार्तवंहिमजलं दुर्गंधि शैवालजम्॥
नाना जीव विमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघ पङ्काविलम्।
चंद्रार्कांशुसुगोपितंनतुपिबेन्नीरं सदा दोषलम्॥

अर्थः—मल, मूत्र, घास, वनस्पति मिश्रित, जो उष्ण, भारी, बुलबुले युक्त-दाँतों के लिए हानिप्रद, असामयिक वर्षा का जल, अति शीतल, दुर्गंधित, विभिन्न कीटाणुयुक्त पत्तों से गंदा होनेवाला, जिसपर सूर्य एवं चंद्रमा का प्रकाश न पड़ सके ऐसा जल सर्वथा त्याज्य है।

जिस जल में जानवर बैठते हों ऐसा जल पेचिश, टाइफाइड, हैजा, यकृत रोग आदि रोगों का कारण होता है। वनस्पति द्वारा दूषित जल से अतिसार, पेचिश-मलेरिया एवं प्लीहा रोग उत्पन्न होता है।

धातु मिश्रित जल से विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं।

जैसे मैग्नेशियम क्लोराइड या सल्फेट से अतिसार कैल्शियम से गलग्रंथि की वृद्धि, जिंकसे कब्ज, लोह से अपच, सीसे से लकवा, गंधक से फोड़े, खुजली आदि।

दूषितं चापि पानीयं क्वथितं चकितापितम्।
सुवर्णं सिकतां ताम्रं पाषाणं पुटलोहकम्॥
भृशं संताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा।
शुचि शुक्लपटस्त्रावि शुद्धंस्याद्दोष वर्जितम्॥

अर्थः—यदि दूषित जल को उबालकर सूर्य के प्रकाश में रखें, सोना, बालू, तांबा, रेत और आयरन आक्साइड को खूब लाल कर पानी में डुबा दिया जाय तथा स्वच्छ कपड़े से छान लिया जाय तो यह पानी पीने योग्य होता है।

पशुओं में प्रकृति ने पचने के लिए 'सलाइवा' का प्रबंध कर रखा है। यदि भोजन अच्छी तरह चबाया जाय तथा सलाइवा (लार) अच्छी तरह मिश्रित हो जाय तो निगलने के लिए जल की आवश्यकता न पड़े। तीव्र रोगों में प्यास अधिक लगती है। थोड़ी मात्रा में जल्दी प्रयोग करना चाहिए।

जल प्रत्येक प्राणियों के लिए प्राकृतिक पेय है। आवश्यकता पड़ने पर साधारण मात्रा में लेना चाहिए। यह हमारे तंतुओं एवं भोज्य पदार्थों में प्राप्य जीवन एवं स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आवश्यक पेट में अधिक जल का बोझ लादना बुरा है। भोजन के मध्य तुरन्त भोजनोपरान्त या पूर्व पीने से आमाशयिक रस के साथ मिश्रित होने से मंदाग्नि उत्पन्न करता है। [डा. आर. टी. ट्राल एम. डी.]

प्यास लगने पर पानी पीना चाहिए। परन्तु अल्प मात्रा में। शरीर में पानी की कमी होने पर प्यास लगती है। परन्तु उस समय पानी से पेट को एकदम नहीं भर देना चाहिए। इससे प्यास नहीं बुझती। अनुभव से यह मालूम हुआ है कि भोजन के बीच प्यास लगती है। परन्तु भोजन के एक घंटे पूर्व एक गिलास पानी पीने से प्यास नहीं लगती। सबसे अच्छा समय प्रातः काल, भोजन के एक घंटे पूर्व एव भोजनोपरान्त एक घंटा बीतने पर है। आयुर्वेद में भी निम्नप्रकार लिखा है:—

उषःकालेऽमृतं वारि जीर्णे वारि बल प्रदम्।
विषवद् भोजनान्तेच भैषजं रोग पीड़िते॥

अर्थ:—प्रातः काल अमृततुल्य, भोजन के बाद शक्ति दायक, भोजन के बाद तुरन्त विष समान, एवं रोग में पानी औषध के समान है।

यदि कोई मनुष्य भोजन के मध्यमें छः से आठ बार पानी पीता है तो यह पानी आमाशयिक रस के साथ मिश्रित होता जाता है और मन्दाग्नि हो जाती है पेट में दर्द होने लगता है। [फादर कनाइप]

"विभिन्न प्रकार के तापांश–जल का प्रभाव"

(१) बर्फ का पानी आँत की नसों को संकुचित करता है। सामान्य रक्त संचालन को घटाता है। पाचन एवं विसर्जन क्रिया को घटाता है। ताप को घटाकर सामान्य अवस्था में करता है। यह सामान्य रूप से देखा गया है कि ताप को

घटाने के लिए एलोपैथिक डाक्टर सिरपर बर्फ की थैली रखते हैं। पीने के लिए सोडा या दूध के साथ बर्फ मिलाकर देते हैं जिससे शरीर का ताप सामान्य से भी ज्यादा घट-जाता है, जिसकी पूर्ति के लिए ब्रांडी का प्रयोग करते हैं। परन्तु नशा समाप्त होनेपर तकलीफ होने लगती है।

(२) प्रातः काल पिया हुआ पानी पेट, हृदय, यकृत तथा वायु होना आदि को रोक कर शक्ति देता है। मल-मूत्र के द्वारा शरीर के विष को निकालता है। अपच, जीर्ण कब्ज, चर्बी, वातरोग, ज्वर आदि में उपयोगी है। ताजगी देनेवाला तथा टानिक का काम करनेवाला है। डा. केलाग का कथन है कि तन्तुओं को खुराक पहुँचाने एवं विजातीय द्रव्य को शरीर के बाहर निकालने का माध्यम पानी ही है। शरीर के अन्दर पानी की मात्रा बढ़ाने से जीवनी शक्ति, रक्त संचार आदि तीव्र होता है।

(३) रोगी को ठण्ड लगने या पसीना निकलने पर ठण्डे पानी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(४) उष्ण जल वमन या विष पान में आवश्यक होता है।

(५) उष्ण जल गुर्दे की बीमारी में लाभदायक है।

(६) अधिक उष्ण जल मांसाहारी व्यक्तियों के लिए उप-योगी है। जिससे यूरिक एसिड एवं विषैलापन दूर होता है। शूल, वायु विकार को मिटाता है। परन्तु आवश्यक उष्ण जल का प्रयोग हानिकर है। इससे कमजोरी होती है। पाचक

क्रिया मन्द पड़ जाती है। दर्द में लाभदायक है। एक चम्मच की मात्रा में उष्ण जल पीने से शूल, खांसी, पेचिश, अतिसार वमन, हैजा, मूत्रावरोध, दर्द आदि में विशेष लाभदायक है।

साधारण ताप का जल रोगी को कभी भी दिया जा सकता है। क्योंकि अधिक ठण्डा या गर्म दोनों घातक हैं।

रोगों को दूर करने के लिए 'उपवास चिकित्सा' का प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें केवल पानी का प्रयोग किया जाता है। परन्तु जिस रोगी में शक्ति अच्छी हो वही उपवास कर सकता है। इसलिए रोगी को भूख लगने पर पानी में फल का रस मिलाकर देना अधिक हितकर है।

डा. बी. एम. कुलकर्णी अपनी दिनचर्या निम्न प्रकार दर्शाते हैं:----

(१) प्रातःकाल छः बजे सोकर उठता हूं।
(२) सारे शरीर की मालिश तब तक करता हूं जब तक रक्त और चर्म गर्म नहीं हो जाता।
(३) शरीर गर्म होने पर स्नान करने बैठ जाता हूं।
(४) स्नान के बाद शरीर को रगड़ कर गर्म करता हूं।
(५) कभी कभी टब में स्नान करता हूं। शरीर को खूब तेजी से रगड़ता हूं।
(६) सुगंधित साबुन का प्रयोग नहीं करता।
(७) शीत ऋतु में एक बार और गर्मी की ऋतु में दो बार स्नान करता हूं।
(८) बगीचे में नंगे पैर घूमने के बाद मैं जौ का रस एक

प्याला पीता हूं जो मुझे स्वास्थ्य एवं शक्ति प्रदान करता है !

(९) मैं भोजन के मध्य पानी नहीं पीता।
(१०) भोजन चबाकर खाता हूं।
(११) मैं हमेशा सादा भोजन करता हूं।
(१२) फल का अधिक प्रयोग करता हूं।
(१३) मैं शाकाहारी हूं।
(१४) मैं किसी उत्तेजक पेय जैसे चाय, काफी, सोडा लेमन आदि को नहीं ग्रहण करता हूं।
(१५) पेट में गड़बड़ी होने पर मैं भोजन त्याग कर फल लेता हूं।
(१६) कब्ज होने पर मैं पीले रंग के फल लेता हूं।
(१७) एनीमा का प्रयोग करता हूं।
(१८) कटिस्नान करता हूं।
(१९) नींद न आने पर पैर का गर्मस्नान लेता हूं।
(२०) सिर दर्दमें सिर, गर्दनका फौवारा स्नान लेता हूं।
(२१) ज्वर में मैं भीगे कपड़े की पट्टी पेट पर रखता हूं।
(२२) महिने में दो या एक बार सारे शरीर का वाष्प-स्नान लेता हूं।
(२३) पश्चात् शीतल स्नान लेता हूं।
(२४) अन्त में हल्की कसरत करता हूं।
(२५) शीतऋतु में वाष्पस्नान लेता हूं।
(२६) वाष्पस्नान के पश्चात् कटिस्नान लेता हूं।

जल का बाह्य प्रयोग

जल स्नान का प्रयोग अतीत काल से रोग निवारण हेतु होता आया है। स्नान से शरीर स्वच्छ, दिमाग ताजा, रक्त शुद्ध स्नायु शक्ति शाली एवं रोग को रोकता है। रोम में कहावत चली आ रही है कि स्नान में ही स्वास्थ्य है। प्लिनी का कथन है कि स्नान लेने के कारण छ: शताब्दी से रोम में किसी चिकित्सक की आवश्यकता नहीं पड़ी।

प्राचीन राष्ट्रों में नित्यस्नान करना धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। हिन्दू नदी को पवित्र मानते थे और बुराइयों को दूर करने के लिए नित्य स्नान करते थे। समुद्र स्नान भी कभी कभी यात्रा में धार्मिकतया अनिवार्य समझा जाता था।

(१) (अ) स्वस्थावस्था में पूर्ण स्नान—किसी तालाब, नदी, झील या समुद्र में कुछ मिनट तक डुबकी लगाना, समस्त शरीर का घर्षण करना एवं स्वच्छ करना यह स्नान ग्रीष्मऋतु में तीन बार, प्रात:, दोपहर एवं सायं लेना चाहिये। शीत एवं वर्षा में एक बार लेना चाहिये। यदि समुद्र में में स्नान लिया जाय तो तुरन्त दूसरे पानी से स्नान कर लेना चाहिये। इसके अभाव में टबस्नान लेना चाहिये।

नित्य शीतल स्नान

नदी या झील में तैरना स्वास्थ्य दायक व्यायाम एवं रोग निवारक साधन है। समस्त शरीर के स्नान से बहुत लाभ हैं। इसका प्रभाव हृदय एवं रक्त-संचालन पर अच्छा पड़ता है।

यह स्नान स्नायुविक, रक्ताल्पता, पागलपन, ब्राइट डिजीज आदि रोगों में नहीं लेना चाहिए।

यह स्नान शरीर के विकारों को निकाल कर बलवान बनाता है। रक्त संचालन ठीक करता है। ऋतु परिवर्तन से तकलीफ में बचाव के लिए दवायें लेनी पड़ती हैं जो हानिप्रद होती हैं। शीतलस्नान से सहन शक्ति तीव्र होती है।

शीतलस्नान शरीर को स्वच्छ ही नहीं करता बल्कि रक्त संचालन को ठीक कर स्वस्थ बनाता है। शीतऋतु में यह स्नान केवल पांच मिनट पर्याप्त है। स्नायुविक एवं अशक्त रोगी को कुछ उष्ण जल से स्नान एवं उच्च ज्वर में सामान्य ताप का जल-स्नान लेना चाहिये।

(ब) उष्णस्नान (सामान्य) से—निमोनिया एवं टाइफाइड में बहुत लाभ पहुंचाता है। नाड़ी सामान्य होती है। ताप घटता है। शरीर के विकार को निकालता है। परन्तु इस स्नान के बादशीतल जल से पोंछना कभी नहीं भूलना चाहिए। आधे घंटे से अधिक समय तक यह स्नान नहीं लेना चाहिये।

(स) तीव्र उष्ण स्नान:—शरीर के शीतल होने, विकार को बाहर निकाल ने में लाभप्रद है। यह स्नान दस मिनट तक लेना चाहिये। इसके बाद साधारण ताप का जल स्नान तथा अन्त में शीतल जल-स्नान लेना आवश्यक है। स्नान के बाद शरीर को रगड़ना या शक्तिवान् रोगी को हल्की कसरत करनी चाहिए। शूल, दर्द एवं घायल होने पर स्थानीय सेंक

लाभप्रद होता है। यह स्नान ५ से १० मिनट लेने से नाड़ी तीव्र होती हैं। श्वसन क्रिया खुल जाती है। चमड़ी लाल हो जाती है यह लघु मस्तिष्क, रीढ़, अतिरज, रजोरोध, जीर्ण ब्रोंकाइटिस, ब्रांको निमोनिया, मेद रोग, जीर्ण वातरोग, पीलिया, पथरी, जननेन्द्रिय शूल, बच्चों का चौंकना, मूत्र-प्रदाह में बहुत लाभकारी है।

वाष्पस्नान या समुद्रीस्नान

जल्दी जल्दी लेना हानिकर है। महीने में एक या दो बार लेना पर्याप्त होता है। इन स्नानों के पश्चात् शीतल स्नान एवं हल्की कसरत या टहलना नहीं भूलना चाहिये।

२ अ—सामान्य स्नान

एक लम्बा बर्तन (जैसा कि माली सींचने के लिये रखता है) लेना चाहिये। पानी को प्रथम सिर से गिराना चाहिये एवं समस्त शरीर को खूब रगड़ना चाहिये। पश्चात् शरीर को सुखा लेना चाहिये। इससे चर्मरोग नहीं होने पाता; बीमारी को रोकता है। स्वास्थ्य को ठीक करता है।

ब—ज्वर में स्नान

हिपोक्रेट्स इस स्नान को ताप घटाने एवं ज्वरावस्था में प्रयोग करता था। क्यूरी तथा जैक्सन भी रक्त-पित्त ज्वर एवं टाइफाइड में प्रयोग करते थे। क्यूरी, केलाग तथा अन्य चिकित्सक साधारण उष्णस्नान की मान्यता करते हैं। रोगी को एक टब में बैठा दिया जाता है। सिर पर बर्फ की थैली

या शीतल जल की पट्टी रख दी जाती है। रक्त-पित्त ज्वर, टाइफाइड, टाइफस, मलेरिया, टाइफो मलेरिया ज्वर में जब ताप १०२° तक पहुंचता है तो ऊपर से कई बाल्टी पानी (७०°) समस्त शरीर पर डाला जाता है।

स—घाव पर उष्ण स्नान

सूजन, जोड़ों के खिचाव एवं घाव लगने पर, चमड़ी न फटी हो तो उष्ण जल डालना चाहिये, पश्चात् शीतल जल डालना चाहिये।

३—ज्वर में स्नान

टब में ६८ से ८०° के ताप क्रम का जल भरकर रोगी को गले तक डुबाना चाहिये। सिर तथा मुंह को पहले शीतल जल से धो देना चाहिये। सिर पर भीगा तौलिया लपेट देना चाहिये। टब में बैठाने के पूर्व रोगी के समस्त शरीर को दो तीन मिनटतक रगड़ना चाहिये। टब में कुछ सेकंड बैठने पर सिर पर शीतल जल एक बाल्टी धीरे धीरे डालना चाहिये। फिर शरीर को रगड़ना चाहिये। अन्त में सिर पर पांच मिनट के लिये पानी डालना चाहिये एवं रगड़ना चाहिये।

यदि हृदय कमजोर हो तो छाती पर भी शीतल जल गिराना चाहिये और घर्षण करना चाहिये। दस मिनट से बीस मिनट तक यह स्नान देना चाहिये। पसीना निकलने, ठण्ड लगने या दांत कटकटाने पर रोगी को तुरन्त बाहर कर देना चाहिए। कम्बल से लपेटकर पैर के पास गर्म पानी

की बोतलें रखनी एवं शरीर का घर्षण करना चाहिए [डा. जे. एच. केलाग एम. डी.]

यदि रोगी को प्यास लगे तो ताजा जल पिलाना चाहिए न कि बर्फ का पानी या बर्फ मिश्रित दूध। स्नान लेते समय मालिश या घर्षण ताप को घटाने का सुन्दर साधन है इससे रोगी को कोई तकलीफ नहीं होती बल्कि ताजगी मालूम होती है।

स्नान के बाद एक साफ कपड़े में लपेटकर कम्बल से ढक देना चाहिये। इससे ज्वर घट जाता है। इस स्नान को १०२° या अधिक ताप रहने पर तीन तीन घंटे पर दुहराते रहना चाहिये।

४- तौलिया स्नान

रोगी अशक्त, एवं तीव्र ज्वर हो तो अवस्थानुसार शीतल या उष्ण जल से समस्त शरीर को पोंछना चाहिये। उष्ण जल के पश्चात् शीतल जल प्रयोग करना एवं शरीर को रगड़ कर गर्म करना नितान्त आवश्यक है।

५- अर्द्धस्नान

पांच फीट लम्बे, दो फीट चौड़े एवं एक फुट गहरे टब में ७०° से ८०° या ८१° से ९०° का पानी आधा भरकर उसी में लेटना चाहिये तथा सभी अंगों को शीघ्रता से रगड़ना चाहिये। दस मिनट में टब के बाहर निकल जाना चाहिये एवं रीढ़पर एक बाल्टी पानी डालना चाहिये। इससे रक्त

संचालन क्रिया बढ़ती है। गहरी नींद आती है। स्नान के बाद यदि मालिश संभव न हो तो कुछ देर टहलना चाहिये।

६— स्थानीय स्नान

एक सुन्दर टब जो गोल शक्ल का हो एक स्टूल पर रख देना चाहिये एवं आवश्यकतानुसार शीर्षस्नान, नेत्रस्नान, भुजास्नान, हस्तस्नान, पादस्नान आदि लेना चाहिये।

अ— शीर्षस्नान

रोगी को एक चटाई पर लिटाकर उसका सिर (पृष्ठभाग) एक चौड़े टब में जिसमें ६०° से ८०° का पानी हो और चार इंच गहरा हो, डुबाना चाहिये। पांच मिनट के अन्तर से मालिश एवं स्नान देते रहना चाहिये। २० से ३० मिनट तक स्नान देना पर्याप्त होता है। पश्चात् तौलिए से पोंछकर मालिश करनी चाहिये। यह स्नान स्नायु केन्द्रों के लिये टानिक का काम करता है। सिरदर्द, कान, चेहरे के स्नायुविक दर्द में लाभकारी है। मूर्छा, मिर्गी, नेत्ररोग, बहरापन, घ्राण शक्ति की क्षीणता, स्वाद न मिलना, धड़कन, स्नायुविक कमजोरी, स्वप्नदोष, रीढ़ की कमजोरी आदि में औषधि का काम करता है। बालों की जड़ मजबूत होती है। रंग काला होता है। इससे स्नान के बाद जुकाम, ज्वर, दर्द होना शुभ चिह्न है।

ब— चेहरे का स्नान

दिन भर में कमसे कम तीन बार प्रातः, दोपहर एवं शाम को सोते समय शीतल जल से बार बार चेहरे पर छींटा मारकर खूब रगड़ना चाहिये। पश्चात् तौलिए से पोंछ लेना

चाहिए। किसी प्रकार के साबुन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इससे ताजगी आती है तथा चेहरे की फुंसियां ठीक होती हैं।

स-- गर्दन-स्नान

गर्दन पर शीतल जल पतली धार में कुछ ऊपर से डालना चाहिये एवं रगड़ना चाहिये इससे सूजन, दर्द ठीक होता है।

द- भुजा एवं कुहनी स्नान

प्रथम १० मिनट गर्म जल में डुबाने के बाद एक मिनट तक शीतल जल में डुबाना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करना चाहिये तथा शीतल प्रयोग से समाप्त करना चाहिये। इस से वातरोग, गठिया, लकवा, सुन्न होना आदि ठीक होता है। स्मीडले का कहना है कि कुहनी स्नान, हाथ, भुजा एवं कंधे की सूजन में उपयोगी है। बर्तन कमसे कम ६ इंच गहरा हो। दिन में चार या पांच बार लेना चाहिये। सूजन हो तो उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिये। ठण्डे जल में डुबाना ठीक नहीं होता।

य- हाथ एवं हथेली का स्नान

आवश्यकतानुसार ठण्डे या गर्म जल में १० से ३० मिनट तक डुबाना। इससे भीतरी अंगों के रक्त का अधिक दबाव ठीक होता है। स्थानीय आघात, स्नायुविक धड़कन, खांसी, दमा, छिन्न श्वास में लाभप्रद है। मूर्च्छा, फेफड़े से रक्त गिरना, शरीर ठण्डा पड़ना आदि में १०१° से १०८° ताप का जल १० मिनट के प्रयोग कर पश्चात् ठण्डे जल में डुबाना चाहिये।

(१) मैं रामतीर्थ मासिक अंक से प्रभावित होकर अपना विचार आपके पास भेज रहा हूं।

सर्व प्रथम मैंने दिसम्बर ६२ के पटने से निकलने वाले हिन्दी लोकप्रिय दैनिक आर्यावर्त समाचार पत्र में 'रामतीर्थ' मासिक को विज्ञापन के रूप में देखा। जिस प्रकार सुन्दर वस्तु को देख कर मानव का आकर्षित होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मुझे 'रामतीर्थ योगाश्रम' इन दो शब्दों ने अपनी तरफ आकर्षित कर लिया। कार्ड लिखने पर रामतीर्थ मासिक का एक अंक प्राप्त हुआ। अब मैं रामतीर्थ मासिक का अप्रैल ६३ से ग्राहक बन कर समुचित लाभ उठा रहा हूं।

रामतीर्थ मासिक हिन्दी साहित्य का रत्नकोष एवं अमूल्य निधि है। रामतीर्थ मासिक मानव जीवन का सर्वांगीण विकास करने का सुन्दर साधन है। इस मासिक अंक का नित्य प्रति पठन-पाठन करने से रोगी नीरोग, पापात्मा पुण्यात्मा एवं पुण्यात्मा अपने अंतिम लक्ष्य (परम पद) की प्राप्ति में पूर्णरूप से समर्थ होगा।

यह संस्था भारत की लुप्त हुई योग विद्या का पुनरुत्थान कर भारत माता एवं विश्व की सच्ची सेवा कर रही है। गीता, रामायण, वेद-वेदान्त के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न कर

मानव जाति का अपार कल्याण करती है।

मेरे विद्यालय का बारह वर्षीय छात्र दहारी साह जो कान से बहरा था, सिंहासन एवं कर्णपीडनासन का सेवन करने से सुनने में पूर्ण समर्थ हो रहा है। यह रामतीर्थ मासिक का ही चमत्कार है। मैं खाली समय में शिक्षित वर्ग में रामतीर्थ मासिक का प्रचार कर रहा हूं। अन्त में प्रभु से मेरी यही प्रार्थना है कि भारत तथा विश्व के बन्धु बहन 'रामतीर्थ' मासिक से अधिक लाभ उठायें।

आपका नम्र पाठक—
जगदीश पाण्डेय प्रधान अध्यापक
ई. आई. पी. प्राथमिक विद्यालय
रामनगर ककरियाडीह
जिला सारण (बिहार राज्य)

(२) "रामतीर्थ का चमत्कार"

आज मैं किताब देखा एक रामतीर्थ की।
मानों घर बैठे ही, आज सब तीर्थ की॥
कायर यह मन मेरा वीरता से भर गया।
मन का विकार सब आप ही आप मर गया॥
योगासन के साधन में, आज से मैं लग गया।
नवीन उत्साह मेरे हृदय में जग गया॥
रोग ग्रस्त शरीर, बहुत दिनों से बना था।
बुरे व्यवहारों में मन मेरा सना था॥

पढ़ते पत्रिका आज, आंख मेरा खुल गया।
मन का विकार 'रामतीर्थ' से धुल गया॥

अनिरुद्ध प्रसाद श्रीवास्तव
ग्राम पोष्ट दोन
जि. सारण (बिहार राज्य)

(३) मुझे बुरा लगा।

सन् १९६३ के फरवरी २० तारीख के दिन इन्दौर शहर में सैर करने गया। इन्दौर शहर से अपरिचित होने से शहरकी दूकान की सजावट, लोगों की वेश-भूषा, हलन-चलन, बोल-चाल व्यक्तियों के हाव-भाव का सूक्ष्म निरीक्षण करता था। सायंकाल घर लौटते समय रास्ते के किनारे में पुरानी पुस्तक बेचने वाले बड़ी आवाज से 'सुख शान्ति के लिये रामतीर्थ खरीदिए' पुकारते थे। लोग सुख शान्ति तथा रामतीर्थ का नामसे आकर्षित होकर एकत्र हुए थे। मैंने जब रामतीर्थ पूछा तब मासिक मेरे हाथ में फेरी वाला रख दिया और कहा सुख शान्ति प्राप्त करना हो तो रामतीर्थ खरीदो। कीमत पूछी तो १ रु. बताया।

देखनेपर रामतीर्थ मासिक था और कीमत ०-५० नये पैसे लिखे थे। विक्रेते से पूछा भैया पुराना मासिक होने से कीमत कम होनी चाहिये तुम तो अधिक कहते हो। मुझे बहुत बुरा लगा। लोगोंको तुम फसाते हो। तुरन्त उत्तर मिला लाल आप तो अभी तक रामतीर्थ मासिक नहीं पढ़े हो इसे पढ़कर देखने से आपके जीवन की उन्नति होगी इस बारे में मैं गारंटी देता हूँ। आपकी उन्नति की कीमत से

इसकी कीमत १ रु. कोई जादा नहीं है। मैंने खरीद लिया। दूसरे दिन से अध्ययन का आरंभ किया। तीसरे दिन से मासिक के लिखे हुये रामायण के मुखपाठ के अनुसार राम भगवान् के पदारविन्द में असीम अनुराग उत्पन्न हुआ। मेरे में कठोरता, समाज विरोधी भावना और अधर्म के लक्षण थे वे सब दूर होने लगे। मेरा जीवन परम पवित्र होने लगा और सभ्य समाज के सज्जनों में से एक हूँ ऐसा मुझे सज्जनों की ओर से आदर होने लगा। रामतीर्थ मासिक से मुझे अवश्य लाभ हुआ है।

सदाका ऋणी
वित्तय्या गौडा, चिकम
गलूर (मैसूर स्टेट)

सूक्ष्म शरीर का आहार स्वाध्याय है। जीवन का सार समझने के लिए जो स्वाध्याय किया जाता है वह स्तुत्य है। रामतीर्थ मासिक के पठन से मेरा मन प्रफुल्ल रहता हैं। जब समय प्राप्त होता है तब मासिक का अवलोकन करता रहता हूं। मेरे लिये जीवन ज्योति के समान प्रतीत होता हैं।

—अवतारसिंह तेजसिंह,
पटियाला (पंजाब)

कुमारावस्था से अनेक भाषाओं में अनेक दैनिक पत्र पढ़ने का मुझे व्यासंग था। सारी दुनिया की खबरें पढ़ने में आनन्द महसुस करता था। दैवसंजोगवशात् रामतीर्थ

मासिक का विज्ञापन अंग्रेजी के दैनिक पत्र में पढ़ा। विचार किया प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रों में जिस मासिक का विज्ञापन छपता है वह मासिक अधिक प्रतिष्ठित तथा अधिक संख्या में देश-विदेश में फैलाव होने वाला होना चाहिए। इस भावना के वशीभूत होकर बाजार से रामतीर्थ मासिक खरीद लिया। पढ़ने पर प्रसन्नता महसूस होने लगी। विगत चार वर्षों से मासिकों में केवल रामतीर्थ मासिक ही पढ़ता हूं। ट्यासंग हो गया।

—डी सोझा फर्नांडीस
वास्कोडिगामा (गोवा)

जमाने का असर मेरे हृदय में हुआ था। माया के जाल में फंस कर विषय भोगों में मस्त रहती थी। अचानक दुर्धर आपत्ति आ गई। घबराई। घर वालों की बातों से श्रद्धा नहीं थी। किसी कारणवशात् मेरे गांव के रेल्वे स्टेशन में जाना पड़ा। रेल्वे बुक स्टोल में रामतीर्थ मासिक के मुख पृष्ठ देख कर खरीद लेने की इच्छा हुई। २०० पृष्ठों का रामतीर्थ मासिक केवल ०-५० पैसे में मिलता है। सस्ताई और आकर्षण के वशीभूत होकर खरीद किया। शांत चित्त से घर पर मासिक पढ़ा। शुभेच्छु उपयोगी रचनाएं पढ़कर मेरे मन की बीमारी दूर हो गई।

श्रीमती कौशल्या गंगाप्रसाद बाजपेई,
ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली.
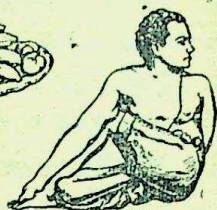
सदाकी भांति मेरा तन और मन सुखमय रहेगा ऐसा मुझे अभिमान था। इस अभिमान से मेरे परिवार एवं मित्र वर्ग को हर्ष होता था। ६० बरस उमर तक यह अभिमान जैसेका तैसा बना रहा। माता-पिता अभीतक जीवित हैं। वे सदा कहते थे मैं बचपन से शरीर तथा मन से आरोग्य संपन्न था। मेरे माता-पिता स्वयं युवावस्था से कुदरती जीवन व्यतीत करते थे। योगाभ्यासी थे। सत्संग के बड़े शौकीन थे। माता-पिता के हम तीन पुत्र हैं। सब भाई जीवित है। किन्तु मेरे दो भाई मेरे जितने आरोग्य संपन्न नहीं है। हम तीनों भाई परिणित है। सबके पुत्र-पुत्रियां हैं।

विचारों में परिवर्तन

हमारे मित्र तथा कुटुम्बियों ने सलाह दी कि ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। इस बात पर मैं एकांत में जाकर गहरे विचार करने लगा। लगातार ९ दिनतक एकांत में २-२ घंटेतक विचारों की

परीक्षा ली। अन्त में मुझे आत्मसंदेश मिला। आत्मसंदेश का मुख्य सारांश यह था कि जो लोग पंचज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेंद्रियां द्वारा प्राप्त होनेवाला सांसारिक वैभव तथा विषय सुख ही सर्वोपरि समझते हैं। उन लोगों के मनमें संदेह बना रहता है। उस संदेह को स्थान देकर योगाभ्यास नहीं करते हैं। फलस्वरूप उनका जीवन तनसे, मनसे, धनसे, आत्म कल्याण से दुःखमय बन जाता है। अन्त में परवश बनकर भोग विलास का सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं। और न आत्मदर्शन का सुख प्राप्त कर सकते हैं। इस बारे में तुम संदेह मत रखो। जीवन भर योगाभ्यास तथा प्राकृतिक जीवन के साथ निकट संबंध रखो। गृहस्थाश्रम में अवश्य योगाभ्यास करो। योगाभ्यासी के लिये ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा ऋषि इन चारों आश्रम अनुकूल हैं। हे नारायण (मेरा नाम नारायण) जिंदगीभर योगाभ्यास तथा प्राकृतिक जीवनके साथ संबंध रखो। आत्मसंदेश के अनुसार जीवन चालू रखा। मेरे दोनों भाई योगाभ्यास नहीं करते हैं। बीमार रहते हैं। दवा मय जीवन व्यतीत करते हैं। ६० वर्ष उमर मेरी होते हुये भी मेरी काया, मन तथा आत्मदर्शन के बारे में मुझे संपूर्णतया संतोष है।

मेरे भाई माया के लपेट में आकर के फस गये। दुःखी हैं। हताश हो रहे हैं और जीवन से निराश बनते जा रहे हैं। इसीको विचारों का चमत्कार, आंदोलन कह सकते हैं। शुभ कार्य के लिये आत्मविश्वास चाहिये। तद्वत कर्तव्य में परिणत कर देना चाहिये।

पाठक वृन्द इस बात पर बारम्बार ध्यान रखिये। सुनिये-पढ़िये और बारम्बार स्मरण रखिए। सुख, सामर्थ्य, समृद्धि और विचारों का चमत्कार। शुभ मार्ग में जाते समय मन नहीं मानता। अनेक प्रयत्नों से मनाने का प्रयत्न चालू रखिये। अशुभ मार्ग में जाने मत दीजिये। मनके आप गुलाम मत बनिये। मनको अपने वश रखिये। मेरा स्वानुभव आपके लिये यत्किंचित मात्रा में काम आ जाय तो मैं अपना जीवन धन्य समझूंगा।

निवेदक
नारायण किशोरलाल वर्मा
शिमला

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख कर भेजें—सम्पादक]

श्री सि. एस. नारायण रामदुर्ग
पत्र नं. प्रश्न १

(१) उष्ण रोग (गर्मी) आने का कारण तथा इससे छुटकारा पाने का उपाय बताने की कृपा करें।

प्रश्न (२) सफेद गाय का दूध देर से पचता है और कफ बढ़ाता है, पीली गाय का दूध वायु और पित्त को नष्ट करता है। काली गाय का दूध सर्वोत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ और वायु नाशक है। तो ये भिन्न गायों के रंग से दूध में इतने फरक होने का कारण क्या है ?

उत्तर १—पित्त प्रधान प्रकृति होने से शरीर में अधिक उष्णता रहती है फिर-ग्रीष्म ऋतु में उसमें अधिक उष्णता आ जाती है। बहुत से प्रदेशों में ग्रीष्म काल में लू चला करती है। शरीर में एक निश्चित मात्रा तक ही उष्णता और शीतलता को सहन करने की शक्ति रहती है। इसके व्यतिक्रम होने पर हैजा, पित्त कामला, फोड़े-फुन्सी, शिरो वेदना, बेचैनी, मंदाग्नि, शरीर का वजन घटना, वीर्यदोष, अनिद्रा आदि अनेक प्रकार के रोग हुआ करते हैं। अधिक मात्रा में गर्म मसाले, मिर्च, लहसुन, हींग आदि का उपभोग करने से भी शारीरिक उष्णता बढ़ती है। सिगरेट, बीड़ी, मांस, मदिरा, मच्छली आदि तामसिक पदार्थों के सेवन से भी गर्मी बढ़ा करती है।

निवारण—सफेद प्याज (कांदा) की सब्जी का उपयोग करने से विशेष लाभ होता है। सफेद प्याज का सलाद (गाजर, मूली, हरी धनिया, भिंडी, ककड़ी, पत्ता गोभी) का भोजन के साथ सेवन करने से शरीर की गर्मी समप्रमाण में रहेगी ब्राह्मी तेल की मालिश करके स्नान के समय बेसन और पीली मिट्टी को छाछ के साथ मिलाकर सिर और शरीर में अच्छी प्रकार ५ से १० मिनट तक मलकर ठण्डे जल से स्नान करें। साबुन का प्रयोग न करें। यह प्रयोग एक मास तक करें। कदाचित् ७-१० दिन में थोड़ा जुकाम हो जावे तो ३ दिन तक मिट्टी का प्रयोग बन्द कर फिर चालू रखें। यह उपचार अत्यन्त लाभदायक है। बेसन, पीली

मिट्टी और छाछ में शरीर के लिए उपयोगी विटामिन्स हैं। स्नान के बाद सिर पर ब्राह्मी तेल की मालिश करें।

नीबू शरबत का सेवन दिनमें २ बार करें। जब तक शरीर में अधिक उष्णता रहे तबतक गेहूं की रोटी का सेवन बन्द रखें। सब्जी, चावल, मूंग की दाल का आहार करें। रागी का पेय बना कर चाय काफी के बदले उपयोग में लावें, प्रात:काल स्नान के बाद आसन करें। तत्पश्चात् ६ बार चन्द्र भेदन प्राणायाम करें। सायं को भोजन के एक घंटे पहले भी चन्द्र भेदन प्राणायाम ६ बार करें इससे शरीर की उष्णता कम होगी। चन्द्रभेदन के बाद ४ बार शीतली प्राणायाम करें। इससे शरीर में शीतलता प्राप्त होगी। नव जीवन, शान्तिमय जीवन, शीतल वातावरण, सत्वगुण प्रधान स्वभाव तथा इन्द्रियों की शक्ति में अभिवृद्धि का अनुभव होने लगेगा। दूध के साथ मीठे आम का रस, अंजीर, जामुन आदि शीत प्रधान फलों का सेवन करें। आम का गुण उष्णता प्रधान होते हुए भी इलायची और दूध के मिश्रण से बल वर्द्धक, रक्त वर्द्धक, रक्त शुद्धी करने वाला तथा सप्त धातु शोधक आदि अनेक महत्वपूर्ण गुणों से परिपूर्ण है।

उत्तर-२-आरोग्य के लिये बकरी का दूध है किन्तु सब के लिये अनुकूल न होने से गाय का दूध उत्तम है। जिस गाय का दूध पीलापन लिये हो वह गाय सर्वोत्तम है। गाय के शरीर के रंग के ऊपर दूध का गुण विशेष निर्भर नहीं क्योंकि प्रादेशिक भूमि के अनुसार ही गाय के रूप, रंग,

स्वभाव, ऊंचाई में कमी वेशी, शरीर का मोटा-पतला होना, तथा आंख, कान आदि की बनावट में परिवर्तन होता है।

उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों की गायों के सींग गले की ओर झुके रहते हैं। कहीं पर सींग और पूछ छोटे होते हैं। जिस दूध में गो लोचन हो वही दूध श्रेष्ठ है। सभी गायों में गोलोचन नहीं होता। इसी से सभी गायों का दूध पीलापन लिये नहीं होता।

गाय और रोग

जिस प्रकार मनुष्य रोग ग्रस्त हुआ करते हैं उसी प्रकार गायों में भी अनेक प्रकार के रोग हुआ करते हैं। रोगी गाय के दूध पीने से रोग ही उत्पन्न होगा। गाय के शरीर से ही उसके अनारोग्य का पता नहीं लग पाता उसके लिये डाक्टरी परीक्षण समय २ पर आवश्यक है। क्योंकि कई बार देखा गया है कि तकड़ी दीखने वाली गाय रोगग्रस्त थी।

अप्राकृतिक जीवन और गायका दूध

जहां गाय २४ घंटे अपने खूंटे पर बंधी रहती है या गली, रास्तेमें घूमकर अनेक प्रकार के दूषित पदार्थ खाती है अशुद्ध जल का सेवन करती है। सूर्य किरणों से वंचित रहती है। हरी वनस्पतियां और हरा घास नहीं मिल पाता। मार पीट करके दूध दुहा जाता है। बछड़े को उचित मात्रा में दूध न देकर उपवास कराया जाता है। गाय से दूध अधिक से अधिक प्राप्त करने के अनुचित रास्ते अपनाये जाते हैं। इस प्रकार की गाय का दूध सर्वथा वर्ज्य गिना जाता है। यह

स्वास्थ्य के लिये अहितकर ही होगा। रोगोत्पादक होगा। तथा पापका भागी बनना होगा।

प्राकृतिक जीवनयापन करनेवाली गाय का दूध

उपरोक्त व्यवस्था के प्रतिकूल जहां पर गाय खुली हवा, धूप में घूम फिर कर अनेकानेक प्रकार की हरी वनस्पतियों का सेवन करती है, शुद्ध जल का सेवन करती है। उस गाय का दूध बुद्धि वर्धक, सात्विक, सप्त धातु शुद्धक, वीर्य दोष को दूर कर वीर्य वृद्धि करने वाला होता है। शरीर में कान्ति, बल, आंखों की दृष्टि बढ़ानेवाला, पाचक शक्ति बढ़ाने वाला होता है।

प्राकृतिक वातावरण में जीवनयापन करनेवाली नीरोग गाय किसी भी रंग की क्यों न हो उसके दुधसे लाभ ही होगा। गोलोचन वाली गाय हर एक नहीं होती इसलिये प्राकृतिक वातावरण का जिक्र किया गया है।

सेवन विधि

पाचनशक्ति जैसी तीव्र या मंद जैसी भी होगी उसीके आधार पर दुग्ध की मात्रा ग्रहण कर सकते हैं। सबसे अधिक गुणकारी धारोष्ण दुग्ध होता है। जहां वह उपलब्ध न हो वहां दूध ४ औंस में एक औंस पानी मिलाकर गरम करें साथ में शक्कर चीनी न छोड़कर काली ६ द्राक्ष छोड़ दें। पश्चात् ठंडा करें। ठंडा करते समय दूधमें फेन उत्पन्न होना चाहिये। फिर दूध को शनैः २ सेवन करें। इससे वायुका दोष, बद-हज्मी आदि न होगी।

श्री० मोतीलाल एस, पटेल (मालखेत] गुजरात राज्य

पत्र-संख्या-२-प्रश्न-१.

मेरे गले में कभी-कभी सूजन हो जाती है, सारा गला लाल हो जाता है। गला और छाती के अन्दर के भाग में खुजली बहुत होती है। कृपया इसका इलाज बताइये।

उत्तर-१-अशुद्ध रक्त में उष्णता बढ़ जाने से अशक्त अवयवों में रक्त का संचय हो जाता है। जिससे सूजन मालूम पड़ती है रक्त में सामान्य स्थिति आने पर सूजन घट जाती है। खुजली का संकेत ही रक्त की अशुद्धि है। हो सकता है कि आपके सारे शरीर का रक्त अशुद्ध हो।

उपचार—योगाभ्यास में कपालभाति कर्म ४ बार, नौली कर्म १ मिनट, बस्ती कर्म १ मिनट, जानुशिरासन ३ मिनट भुंजगासन २ मिनट, सिंहासन २ मिनट, विपरीत कर्णी ६ मिनट, गोमुखासन २ मिनट करना चाहिये।

जल चिकित्सा— प्रातःकाल ठंडे जल में स्नान करें। स्नान के समय नाभि के नीचे के भाग में जल धारा चालू रखें। दाहिने हाथ को नाभि के अगल बगल में गोलाकार घुमावें। ६ दिन तक ५ मिनट, ६ से १५ दिन तक १० मिनट, इसके बाद में १५ मिनट तक चालू रखें। बाद में सारे शरीर का स्नान करें। हप्ते में एक बार स्नान के समय नीम के पत्तों को उबाल कर तैयार किये जल से स्नान करें।

आहार— रक्त शुद्धि के लिए आहार की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। प्रातःकाल दन्त धावन के बाद १४ औंस

ठंडे जलमें नीबू का रस आधा तोला मिलाकर सेवन करें। जिससे रक्त में रही हुई अधिक उष्णता में कमी होगी और रक्त शुद्ध होगा। आसन करने के आधा घंटा बाद गाय के दूध में २ अंजीर और १० काली द्राक्ष का सेवन करें।

दोपहर के भोजन में ज्वार की रोटी, चावल, तुवर की दाल, सब्जी, हरी पत्ती की भाजी और सलाद लें। भोजन में कच्ची हल्दी का उपयोग अवश्य करें।

वर्ज्य— बैंगन, अधिक मिर्च मसाला, उत्तेजक तथा उष्णता प्रधान पेय, चटनी, पूरी आदि तली हुई वस्तुएँ।

रातका भोजन— ज्वार की रोटी और सब्जी, भोजन के बाद मौसम्बी का सेवन करें। दोपहर के भोजन के बाद संतरा लें। दिन में बार ७ जल का सेवन करें। ३–४ मास तक उपरोक्त योगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा करने से पूर्णतः लाभ हो जायगा। एक मास में सुधार नजर आ जावेगा।

श्री एम. जीतसिंह देहरादून

पत्र ३ प्रश्न १— आसन क्या है? किसी ऐसे सरल व्यायाम करने की विधि बतलाइये जिससे शरीर हृष्ट पुष्ट हो जाये तथा शरीर में ताकत भी आ जाये और छाती भी बढ़ जाये।

उत्तर १— योग क्या है? आसन क्या है? इसके लिये उमेश योगदर्शन, (प्रथम खंड) पढ़िये तो आपको ज्ञात होगा कि कुल ८४ लाख आसन हैं। परन्तु उनमें से ८४ आसन ही मुख्य हैं। फिर उनमें से ३२ मुख्य हैं फिर उनमें से १६, और

१६ में से ४ आसन ही मुख्य है और ४ में से भी एक ही आसन सर्व प्रधान है।

शरीर आरोग्य तथा हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिये प्रतिदिन निम्न लिखित आसन किया करें।

शीर्षासन १० से ३० मिनट, शवासन ५ मिनट, उत्थान पादासन १ मिनट, पवन मुक्तासन २ मिनट, उर्ध्व सर्वांगासन ५ मिनट, सर्वांगासन ५ मिनट, कर्ण पीडनासन १ मिनट, भुजंगासन २ मिनट, शलभासन २ मिनट, जानुशिरासन २ मिनट, पश्चिमोत्तानासन १ मिनट, अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट, वज्रासन १ मिनट, सुप्त वज्रासन १ मिनट, मत्स्यासन १ मिनट, सुप्त धनुरासन १ मिनट, सबके अन्तमें ५ मिनट शवासन।

मानसिक शांति और शारीरिक शक्ति को सन्तुलित बनाये रखने के लिये प्रतिदिन स्नान करने के बाद प्रातःकाल में १ घंटे तक योगासन का अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार के अभ्यास से पाचन यंत्र बराबर काम करते हैं। भूख अच्छी आती है। नींद अच्छी आती है। मन में समाधान कारक सात्विक गुण विराजमान रहता है। जीवन भर रोग-शोक दूर रहते हैं। जिससे पारिवारिक शांति बनी रहती है। नौकरी अथवा धंधा अच्छा चलता है। धन का अपव्यय होने से बच जाता है। दुःख से निवृत होने के लिए सदा योगाभ्यास करते रहना चाहिये।

भुजंगासन, पूर्ण पद्मासन तथा सुप्त धनुरासन के अभ्यास

से छाती का भाग बढ़ जाता है। फेफड़े तथा हृदय मजबूत बनते हैं।

श्री वी. एल. सप्रे

पत्र ४ प्रश्न १

शौच और कफ साफ होने के लिए क्या प्राकृतिक उपाय है ?

प्रश्न २:-ईश्वर भक्तिसे मनुष्य प्रभु को कैसे पा सकता है योग और प्राणायाम के बिना इस रास्ते में क्या सफलता नहीं हो सकती ?

प्रश्न ३ रा:—जब की प्रभु की सेवा ही सत् और उचितमें मार्ग है उसी के लिये मनुष्य ने जन्म लिया है तो संसार का त्याग करके मनुष्य अपने को प्रभु सेवा में अर्पण करने में क्या अनुचित है जब कि संसार राम पर ही भरोसा रखकर इतना बड़ा दुख सह लेते हैं तो पूर्ण मन से राम को ही सब कुछ समझ कर बाकी सब छोड़ देना क्यों गलत है कोई भी कार्य में जब तक मनुष्य तनमन धन से नहीं लगन लगाता तब तक सफलता भी दूर भागती है स्वार्थ और परमार्थ एक ही समय सफलता कसे मिल सकती है माता पिता की अनुमति इस कार्य में मोह और पुत्र के ऊपर अविश्वास के बजह से मिलना कठिन है और माता पिता को दुख देकर इस कार्य में लगने से सफलता असंभव है ऐसे हालत में क्या करना उचित हैं प्रभु सेवा के उच्च विचार के सामने मोह को खड़ा करके दुःख सहते सहते अपना वक्त जाया करना ही

क्या उचित समझा जाता है मनुष्य के ऊपर संगति का परिणाम बहुत जल्दी होता है वह संसार में रहेगा तो जरूर उसी चक्कर में रहेगा और वह आश्रम में होगा तो तप में लगा रहेगा यह सब जानते हुवे इस चक्कर में क्यों पड़ना ?

उत्तर १—उड्डियान, नौलीकर्म से शौच व्यवस्थित हुआ करता है। प्रातः १ गिलास जल का सेवन करें। भोजन के समय सलाद और हरी पत्ती की भाजी को लें। भोजन के बाद पपीते का सेवन करें। प्रातः काल स्नान करने के बाद आसनाभ्यास कर चुकने के आधे घंटे बाद दूध और केला लें। दिन में ५-६ बार जल को लें। प्रात: काल लोलासन १ मिनट, अर्धमत्स्येन्द्रासन ४ मिनट, उत्थान पादासन ३ मिनट करें। प्रातः काल दन्त धावन के बाद १ गिलास जल पीकर ३ बार उत्थान पादासन करने से शौच भली भांति साफ आ जाता है।

कफ निवारण के लिये धौतिकर्म, नेती कर्म, कपाल भाति ३ बार तथा भस्त्रिका प्राणायाम ५ बार सुबह करें।

उत्तर २-मन की एकाग्रता और संयम से ईश्वर दर्शन होता है। आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से मनुष्य ईश्वर मय बन जाता है। भक्ति योगसे ईश्वर दर्शन प्राप्त होता है। किन्तु शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य के कारण योग अधिक उत्तम है। शरीर तथा मन द्वारा ईश्वर दर्शन ही किया जाता है। अष्टांग योगाभ्यास से शरीर नीरोग, मन पवित्र तथा ईश्वर दर्शन का अलभ्य

लाभ प्राप्त होता हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण ईश्वर प्राप्ति का साधन अष्टांग योग है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के क्रमिक अभ्यास से मनुष्य ईश्वर ही बन जाता है।

उत्तर ३-मनुष्य जन्म पाकर आहार निद्रा, भय, मैथुन में ही जीवन के बहुमूल्य क्षण बिता देने से दुःख को निमंत्रण देने के समान है। सुख की कामना मृगतृष्णा जल के समान है। इस हेतु आत्म दर्शन (अपना मूल स्वरूप) पाने का प्रयत्न करना अनिवार्य है। प्राणिमात्र को सुख शान्ति प्रिय लगती है। उसकी प्राप्ति के अनेकानेक साधन अभ्यास, विधि, नियम आदि हैं। गृहस्थाश्रम अन्य ३ आश्रमों का आधार है। उसमें रहते हुए आत्मकल्याण एवं लोक कल्याण का प्रयत्न करना चाहिये।

भारतभूमि का इतिहास ही शान्तता और सौमनस्य का है। यहाँ पर बहुत से लोग ऐसे हो चुके हैं और वर्तमान में बहुत से लोग गृहस्थाश्रम जीवन में भी आत्मज्ञान के पथ पर आगे बढ़े।

स्वामी रामतीर्थ, भगवान् राम व कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, भगवान् वेद व्यास, वाल्मीकि, वशिष्ठ आदि योगी लोग अधिकांश में ग्रहस्थी थे। संसार में रहते हुए परमार्थ मार्ग का पथिक बनना महत्वपूर्ण गिना जाता है। शरीर तथा मन को संकटपूर्ण स्थिति प्राप्त होने की दशामें उसको

सहन करते हुए परमार्थ मार्ग को अपनाना चाहिये। योगाभ्यास, सत्संग, सच्छास्त्रों का अध्ययन, पवित्र तथा वृक्ष-लतादिक से पूर्ण स्थानमें निवास करने से मानव जीवन सार्थक बनेगा। सत्, चित् आनन्द स्वरूप प्राप्त होगा। सुख, सामर्थ्य समृद्धि बढ़ेगी। योगाभ्यासियोंको अयाचित ८ प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। पर उनमें न फस कर आत्म कल्याण के लिए प्रयत्न करना अनुकूल है।
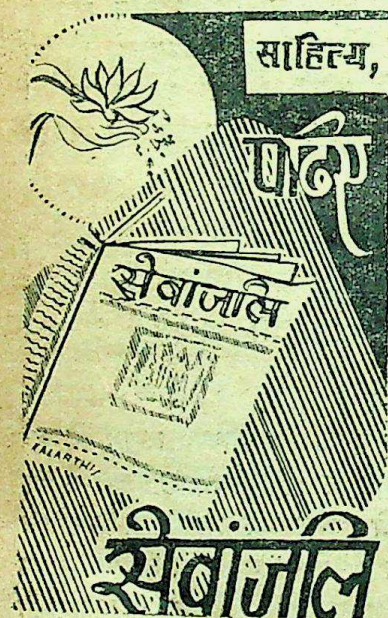
[श्री रामतीर्थ योगाश्रम के व्याख्यान खंड में हर शनिवार सायंकाल ७ बजे और हर रविवार प्रातःकाल १० बजे व्याख्यान होता है। उसके सारांश रूप में आश्रम समाचार स्तंभ से प्रकट किया जाता है। सप्ताह में एकबार आश्रम के संचालक योगीराज श्री० उमेशचन्द्रजी का व्याख्यान होता है और एक बार अन्य आगन्तुक उच्चकोटि के योगी, ऋषि, महात्मा, साधु संत एवं प्रखर विद्वानों का व्याख्यान होता है। बहुधा सप्ताह में एक बार शारीरिक आरोग्य और एक बार आत्मदर्शन के बारे में योग, वेदान्त, भक्ति आदि के बारेमें सार्वजनिक सत्संग होने से सर्व धर्म के अनुयायी वर्ग इस सत्संग का लाभ उठा सकते हैं। —व्यवस्थापक]

योग से तन नका विकास कीजिये

भाषण कर्ता—श्री कालुभाई बसिया (जगतप्रवासी)
विषय—विदेश प्रवास का नवीनतम अनुभव
स्थान—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम का व्याख्यान खंड

भाइयो तथा बहनो !

भारतवासियो में ऐसे लोग हैं कि साधन सुसम्पन्न होते हुए भी विदेश प्रवास के प्रति उदासीन रहा करते हैं। यदि व्यक्ति को अनुभवशील होना है तो उसे प्रवास करना ही चाहिये क्यों कि नये नये अनुभव प्राप्त करने के लिये प्रवास अनिवार्य है। यह दुनिया बड़ी विशाल है जितना इसमें जाना जाय उतना ही कम है। मैं बम्बई में अनेक वर्षों से निवास करता आ रहा हूं। बम्बई में हैंगिंग गार्डन प्रख्यात है, यह बम्बई वासियों के लिये टहलने का गौरव पूर्ण स्थान है किन्तु विदेशी अनेक शहरों के पुष्प उद्यानों के सामने इसका महत्व सामान्य है। विदेशी लोग केवल नौकरी धंधा करना ही जानते हैं, ऐसा नहीं वे लोग छुट्टी के समय का भी बहुत अच्छी तरह से उपयोग करते हैं। पुष्प वाटिकाओं में या रम्य उपवनों में घूमने फिरने जरूर जायेंगे। प्राकृतिक सौंदर्य के स्वाभाविक स्वरूप का दर्शन करेंगे। जब विदेशियों का भारत में राज्य था तो वे लोग गर्मियों के दिनों में पर्वतीय स्थानों में फिरने को जाते ही थे इसीसे उन्होंने कई उपयोगी पर्वतीय नगरों को जन्म दिया। आज भी हम गौरव के साथ कहते हैं कि बम्बई के समीप माथेरान, पंचगनी, महाबलेश्वर आदि स्थानों में पर्यटन के लिए जाते हैं। प्राकृतिक

दृश्य, शीतल स्थान, शांत प्रदेश, शुद्ध जलवायु आदि साधनों से जीवन का आनन्द लेते हैं।

मैं अनेक बार विदेश गया हूं। जैसे हमारे देश के लोग निन्दा-स्तुति में समय बर्बाद कर जीवन की बर्बादी किया करते हैं वैसी विदेशों में निन्दा की कोई बात नहीं। आवश्यकतानुसार ही किसी की प्रशंसा करेंगे। कर्तव्यनिष्ठ रह कर अपना काम करते रहते है। यहां जितना एक व्यक्ति कमाता है, और १० व्यक्ति बिना काम के बैठे २ जीवन निर्वाह करते हैं ऐसा विदेशों में नहीं है। गृह उद्योग, कार्यालयों, कारखानों, बागों में, खेतों आदि में अपनी २ योग्यतानुसार प्रवृत्ति मूलक काम करते रहते हैं।

हमारे देश की महिलाएं शर्म, संकोच, अपमान, निन्दा और मन की कमजोरी के वशीभूत होकर कर्तव्य पालन से हिचकिचाती हैं। परन्तु विदेशी महिलाएं नैतिक, धार्मिक, सामाजिक कार्य कलापों में अथवा उद्योग धन्धों में, छात्र-छात्राओं को पढ़ाने में, खिलौने आदि के निर्माण में विभिन्न प्रकार के कार्य करती हुई व्यस्त रहा करती हैं।

जीवन का महत्व

भारत में केवल अध्यात्मज्ञान की उपलब्धि को जीवन का सर्वोपरि महत्व समझा जाता है। शरीर एवं मन को कष्ट देने में महत्व दिया जाता है। त्याग और वैराग्य की प्रशंसा की जाती है। वैसी बातें विदेशों में कम ही दिखाई देती हैं। वे

लोग स्त्री हो या पुरुष अपने काम में लगे ही रहेंगे। व्यर्थ की बातें करने का उनके पास समय ही नहीं। उन्हें दुष्कर्म के बारे में समय नहीं मिलता, निन्दा स्तुति का समय नहीं। कर्तव्यनिष्ठ रहने से उनकी आमदनी अच्छी रहती है। आर्थिक संकट का सामना करने का समय नहीं आता। फिर शर्म, संकोच, मन की कमजोरी तथा अपमान की बात ही कहां रही ?

गृह कार्य

विदेशों में घर के काम करने वाले अपवाद रूप से होते हैं। उच्च परिवार के स्त्री-पुरुष, अफसर आदिकों को अपने घर का काम अपने हाथों ही करना पड़ता है। कपड़े धोना, बर्तन साफ करना, कचरा निकालना, बच्चों की देखभाल करना आदि काम सब अपने ही हाथों करते हैं।

अतिथि सत्कार

विदेशों में रास्ता चलते समय यदि किसी व्यक्ति से कहीं का पता ठिकाना पूछा जाय तो वह यथा संभव प्रयत्न से मार्ग दर्शन करेगा ताकि परदेशी आगन्तुक को किसी प्रकार की प्रतिकूलता अनुभव न हो। विदेशी लोग मेहमानदारी और आदर सत्कार को विशेष महत्व दिया करते हैं। मानसिक विचार के आदान-प्रदान में जीवन का आधार है ऐसा समझ कर आतिथ्य सत्कार को महत्व देते हैं।

भारतवासी संसार के विभिन्न देशों में वास करते हैं बहुत से लोग तो वहीं बस चुके हैं। इसके अनेक कारण हैं। आर्थिक उन्नति, आदर सत्कार और कर्तव्यनिष्ठा के वशीभूत हो जाया करते हैं। सुबह जिस काम को हाथ में लेते हैं उसे पूरा कर ही सांझ को खेल-कूद, मनोरंजन, तैरना, टहलना अथवा मानसिक शान्ति के साधनों में जुटते हैं।

छुआछूत का संबन्ध

वहां पर छुआछूत की कोई समस्या नहीं। केवल गन्दे वस्त्र वाला ही स्वच्छ वस्त्रधारी के पास जाने में संकोच करेगा शुद्ध वस्त्र पहनने पर सभी संकोच दूर हो जाते हैं। वहां के अधिकांश वासी परलोक सुख के बदले वर्तमान जीवन के सुखको अधिक महत्व देते हैं।

मेरा निजी अनुभव और अंग्रेजी भाषा

डेन्मार्क, स्वीजरलैंड, जर्मनी, इंग्लैण्ड, इटली, पूर्वी अफ्रीका, जापान, अमेरिका के अनेक शहर, ईराक, ईरान, तुर्की, आदि देशों का अनेक बार पर्यटन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे केवल गुजराती ही शुद्ध बोलने को आती है हिन्दी का काम चलाऊ ज्ञान के अतिरिक्त मुझे अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं का ज्ञान ही नहीं है। विदेशी भाषा अथवा अंग्रेजी के ज्ञान विना विदेशों में पर्यटन करना असाध्य कहने वाले मिलेंगे। परन्तु मेरे अनुभव से यह साध्य है। सन् १९१८ के तथा १९५६

तक के विश्व युद्धों में विदेशों को अनेक प्रकार की हानि पहुंची है। जनहानि तो विशेष मात्रा में हुई। फलतः अनेक विदेशी नगरों की जनसंख्या में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। जो भारतवासी विदेशों में जाते है वे अधिकांशत वहीं बस जाते हैं। इसके अनेक कारण हैं। जैसे भारत अध्यात्म ज्ञान का केन्द्र है। कामधेनु समान यहां की विद्या है। शम, दम, तितीक्षा, समाधानस्वभाव होने से विदेशियों के साथ मिल जुलकर काम करने लगते हैं और वहीं बस जाते हैं।

वक्ता— आचार्य सत्यदेव शास्त्री

विषय— कर्म और ज्ञान का समन्वय

स्थान— श्री रामतीर्थ योगाश्रम का व्याख्यान कक्ष

आज की सभा के अध्यक्ष श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी तथा उपस्थित सज्जनो एवं माताओ ! आचार्य सायण ने कहा है—कि मानव को अलौकिक उपाय करना उचित है, लौकिक नहीं। जो हम चाहते हैं वह इष्ट हैं, जो नहीं मानते वह अनिष्ठा से सुख को चाहना सबके मनमें रहता है। दुःख से दूर भागते रहते हैं। पशु में जिज्ञासा नहीं हैं। सूर्य कहाँ से आया ? इस बारे में विचार नहीं करते हैं। मनुष्यों में खोज करने की जिज्ञासा बनी रहती है। सुख दुःख यह जीवन के दो पहलु हैं। पुत्र पैदा हुआ तो सुख होता है और पुत्र की मृत्यु होती है तो दुःख होता है। धन प्राप्ति होती है तो सुख होता है और चले जाने पर दुःख। अनुकूल सुख और प्रतिकूल दुःख है।

गुरु गोविन्दसिंहजी से किसी ने एक बार प्रश्न पूछा कि सुख का स्वरूप क्या है? जवाब मिला कि तलवार की धार पर शहद (मधु) लगा हो और उसे चाटते समय जीभ पर खरोंच लग जाय तो उसका दुःख होता है और मधु खाने का सुख मिलता है। इसी प्रकार सांसारिक सुख का स्वरूप भी समझना चाहिये।

सुख का स्रोत

आनन्द प्राप्त करने के लिये बाहर से प्रयत्न किया जाता है। बाहर की वस्तु, साधन, व्यक्ति, दृश्य से आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। पुष्प वाटिका में खिले हुये सुगंधित फूलों को आंखों से देखकर आनन्द लेने का प्रयत्न करते हैं। फूलों की सुगंध तथा सौन्दर्य से अन्तःकरण में आनन्द का अनुभव होता है। इस आनन्द का कारण फूलों का समूह बना। आनन्द उन पुष्पों में न था, पहले से ही दृष्टा में था। अज्ञानवश उसका पता नहीं लगा था। सुगन्ध और आकर्षक पुष्पों के निमित्त से आनन्द का अनुभव होने लगा। अज्ञान और ज्ञान की यही परीक्षा है।

आनन्द का निजी स्रोत अपनी आत्मा में स्वयं सिद्ध होते हुये अन्यों से मैंने प्राप्त किया ऐसा भास अज्ञानवश ही होता है। कर्म की परिभाषा गूढ़ है। कर्म से कोई भी खेचर, भूचर, चराचर प्राणी अलिप्त नहीं रह सकता है कर्म करना प्रत्येक के लिये अनिवार्य है। हम केवल पंचकर्मेन्द्रिय द्वारा होनेवाले कर्मको ही कर्म कहें तो यह उचित न होगा। आंखोंसे देखना, कानोंसे सुनना, त्वचा से स्पर्श करना, नाक से सूंघना,

जीभसे स्वाद लेना ये सभी कर्म ही हैं। परन्तु यह सूक्ष्मकर्म हैं।

कर्म-उपासना और ज्ञान

प्रथम सकाम कर्म— फल की इच्छा सहित कर्म। जब सकाम कर्म के फल विषयक पूरी समझ आ जाय और लाभा-लाभ का यथोचित ज्ञान हो जाय तब निष्काम कर्म में प्रवेश करें। सकाम कर्म से निष्काम कर्म उत्तम है। सकाम कर्म में मनुष्य को कभी उत्साहित होना पड़ता है तो कभी हतोत्सा-हित। लाभ हानि का अनुभव भी लेना पड़ता है। मान-अपमान के प्रसंग भी आते हैं। कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनेक बार सकाम कर्म करते हुये मनुष्य के जीवन में परिवर्तन होने का संभव रहता है। सकाम कर्म में यथेच्छ फल प्राप्ति होती जाय तो दैवी गुण सम्पन्न होकर निष्काम कर्म में आसानी से प्रवेश किया जा सकता हैं। निष्काम कर्म सकाम कर्म से श्रेष्ठ है। फलकी इच्छारहित हो कर्म करना ही निष्काम कर्म है। आरंभ में अमुक समय तक निष्काम कर्मी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निष्काम कर्म से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर अन्तःकरण में नहीं रहते, अन्तःकरण पवित्र होगा। रात को नींद गहरी आयेगी, चिन्ता मुक्त रहोगे। आत्मज्ञान प्राप्ति का अधिकार निष्काम कर्मी को प्राप्त हो जाता है। निष्काम कर्मी बनने के पश्चात् उपासना करनी चाहिये। उपासना में जप तप, यज्ञ, तितीक्षा, उपवास, भगवदाराधना, आत्म ज्ञान के बारे में तीव्र इच्छा, योगाभ्यास आदि महत्वपूर्ण अंग जीवन में उतारकर उपासना की अंतिम सिद्धि आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

(शेष पृष्ठ १६ का)

जग के सारे परिवर्तन में ।
स्नेही के मृदु संवर्तन में ॥
भट के महा भयंकर रण में ।
दु:खित जन के संकट क्षण में ॥
रोगी के विचित्र लक्षण में ।
दृढ़-प्रतिज्ञ के निश्चय प्रण में ॥
ऊपर, नीचे सब त्रिभुवन में ।
जनमें, जन मन गण, तन, धनमें ॥
मृगनैनी के मधु चितवन में, प्रेमीजन के मधुर मिलन में ॥
ध्यानीजन के प्रभु-चिंतन में, कर्मीजन के कष्ट-यतन में ॥ ५ ॥
सत् सत्याग्रही के अनशन में ।
दुराग्रही के हठ, अनबन में ॥
सरल व्यक्ति-जीवन-यापन में ।
निठुर शक्ति के कटु शासन में ॥
तपस्वियों के भीषम तप में ।
जपधारी के अनुपम जप में ॥
जीवन के सब संघर्षण में ।
जगत सर्व स्नेहाकर्षण में ॥
सर्व अमंगल या मंगल में ।
सारे जीवन के पल पल में ॥
खोजा तुझको, कुछ कुछ पाया ।
अपने को था स्वयं भुलाया ॥
इनमें था तव अल्पाभास, किन्तु खड़ा था तू मम पास ॥
तुझे न खोजा निज हिय, मनमें, विहँस खड़ा था तू हद घनमें ॥ ६ ॥

श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद साधक को बीड़ी–सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली हुई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के२७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रात:काल ७ से ९ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।